श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

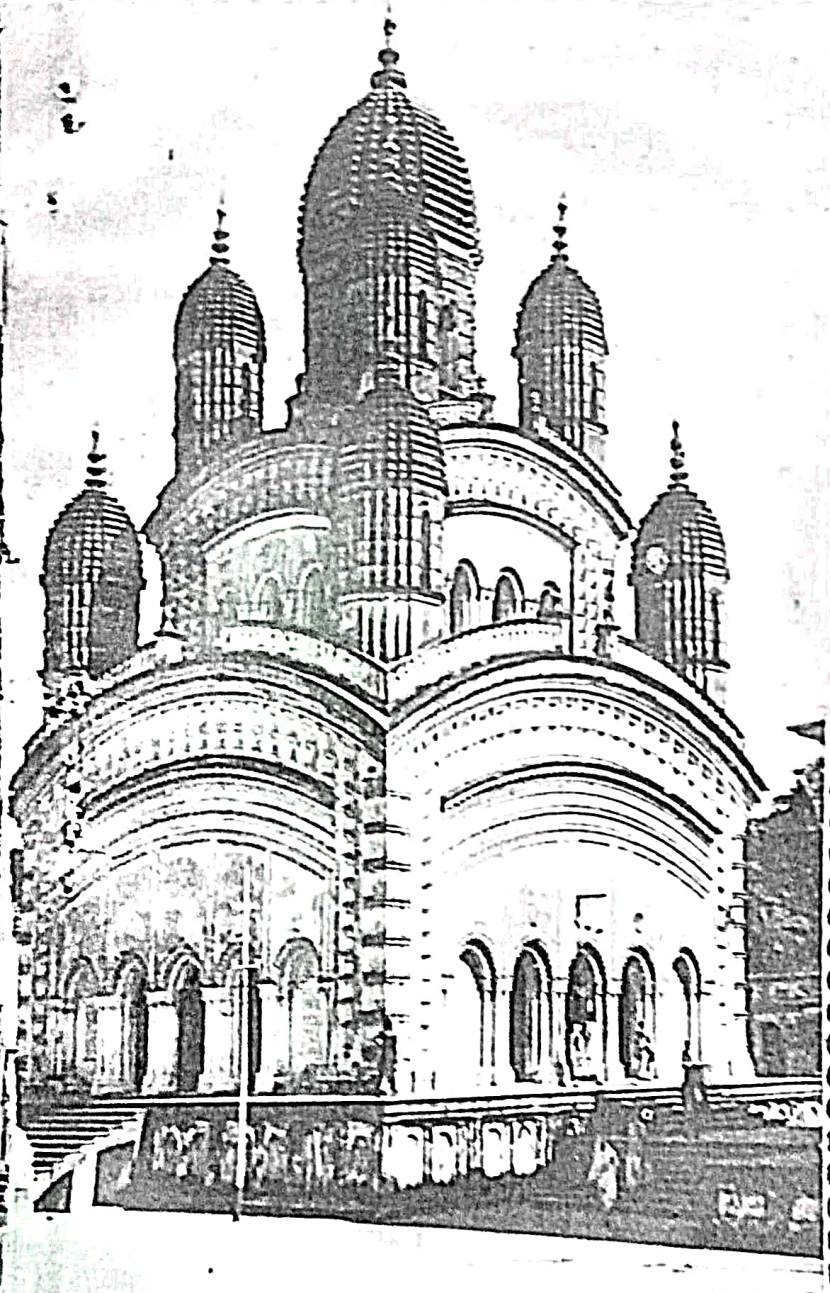

वर्ष–११ मई-१९९२ अंक–५

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा–८४१ ३०१ (बिहार)

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

९१. श्रीमती कमला घोष —इलाहाबाद
९२. श्री एस. बी. शर्मा - अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा आनंद —बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री अम्बिकांत सिंह—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० बी० सरोज—बम्बई
९६. श्री ए० के० भट्टर्जी, आई. ए. एस.—पटना
९७ सचिव, विवेकोज्जीवन लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम —इन्दौर (म० प्र०)
१०१ शारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२ डॉ० ओमप्रकाश शर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—बीनाज (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ आरवारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—जयपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश बलमवू —पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार डाड —अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त पुष्टिमाचार्यजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद—जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२ श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० बी० सी० सिन्हा— रीवां (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवां (मध्य प्रदेश)
११५. भारत समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्री रामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त म० नागपुरे (नागपुर)
११८ श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. मंत्र जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय अग्रवाल, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री गोविंदराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)

# इस अंक में


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. | श्री रामकृष्ण ने कहा है | १ |
| २. | हे हरि ! कस न हरहु भव भारी | गो स्वामी तुलसी दास २ |
| ३ | [illegible] | सम्पादकीय सम्बंधन ३ |
| ४. | स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण | स्वामी सदाशिवानन्द १० |
| ५. | स्वामी गंभीरानन्दजी के सान्निध्य में | अनिल कुमार चट्टोपाध्याय १६ |
| ६ | [illegible] | ब्रह्मचारी रमाकर चैतन्य २४ |
| ७ | [illegible] | स्वामी विवेकानन्द २७ |
| ८. | समर्पण समाचार | समाचार |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—११ १९९२—मई अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
( बिहार )
फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य— | ५०० रु० |
| वार्षिक— | ३० रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से— | ४५ रु० |
| एक प्रति— | ४ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

जो फल अपने आप पककर गिर पड़ता है वह बहुत मीठा लगता है, परन्तु कच्चे फल को तोड़कर पकाने से वह खाने में अच्छा नहीं लगता, और जल्दी सूखने लगता है। इसी तरह पूर्ण ज्ञान-चैतन्य प्राप्त हो जाने से मनुष्य के भीतर से जाति-भेद अपने आप चला जाता है, परन्तु अज्ञानियों के लिए जाति भेद की बड़ी आवश्यकता है। अज्ञान अवस्था में रहकर यदि कोई जात-पांत का भेद हटाकर, यथेच्छाचार करते हुए सिद्ध का भाव दिखाने लगे तो उसे जबरदस्ती पकाए हुए फल की तरह जानो।

( २ )

जो लोग किसी को पूजा-उपासना करते देख उसकी खिल्ली उड़ाते हैं, धर्म की या धार्मिक व्यक्तियों की निन्दा करते हैं, साधना की अवस्था में ऐसे लोगों से दूर रहना चाहिए।

( ३ )

जिसे विद्या या धन का गर्व हो उसे ईश्वर-लाभ नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति से यदि तुम पूछो, "अमुक स्थान पर एक अच्छे साधु हैं, उनके दर्शन के लिए चलोगे ?" तो अवश्य ही वह बहाने बनाते हुए कहेगा, "मैं नहीं जा सकता।" वह सोचता है—'मैं इतना बड़ा आदमी ! मैं उसके पास जाऊँगा !' अज्ञान के कारण ही यह अहंकार होता है।

# हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी

—गोस्वामी तुलसीदास

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जबलगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।१।।
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाईं ।
बिन बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‌यौ कीट की नाईं ।।२।।
सपने व्याधि विविध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
वैद अनेक उपाय करै जागे विनु पीर न जाई ।।३।।
श्रुति-गुरु-साधु-समृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, विपति सकै को टारी ।।४।।
बहु उपाय संसार तरन कहँ, विमल गिरा श्रुति गावै ।
तुलसिदास मैं—मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ।।५।।

---

भावार्थ—हे हरे ! मेरे इस (संसार को सत्य और सुखरूप आदि मानने के) भारी भ्रम को आप दूर क्यों नहीं करते ? यद्यपि यह संसार मिथ्या है, असत् है, तथापि जब तक आपकी कृपा नहीं होती, तबतक तो यह सत्य-सा ही भासता है ।१। मैं यह जानता हूँ कि (शरीर-धन-पुत्र आदि) बिषय यथार्थ में नहीं है, किन्तु हे स्वामी ! इतने पर भी इस संसार से छुटकारा नहीं पाता। मैं किसी दूसरे द्वारा बिना बाँधे ही अपने ही हठ (मोह) से तोते की तरह परवश बँधा पड़ा हूँ ।२। जैसे किसी को स्वप्न में अनेक प्रकार के रोग हो जायँ जिनसे मानो उसकी मृत्यु ही आ जाय और बाहर से वैद्य अनेक उपाय करते रहें, परन्तु जब तक वह जागता नहीं तबतक उसकी पीड़ा नहीं मिटती (इसी प्रकार तत्वज्ञान के बिना संसार की पीड़ाओं से छुटकारा नहीं मिल सकता) ।३। वेद गुरु, संत और स्मृतियाँ—सभी एक स्वर से कहते हैं कि यह दृश्यमान जगत असत् है, दुःख रूप है। जबतक इसे त्यागकर श्री रघुनाथ जी का भजन नहीं किया जाता तबतक किसकी शक्ति है जो इस विपत्ति का नाश कर सके ? ।४। वेद निर्मल वाणी से संसार-सागर से पार होने के अनेक उपाय बतला रहे हैं, किन्तु हे तुलसीदास ! जब तक 'मैं' और 'मेरा' दूर नहीं हो जाता—अहंता—ममता नहीं मिट जाती, तब तक जीव कभी सुख नहीं पा सकता ।५।

सम्पादकीय सम्बोधन

# लय भंग न हो, टूटे न ताल

**मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,**

कई मित्र जब-तब अपनी साधना में उत्पन्न होनेवाली बाधाओं के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए कहा करते हैं—"क्या पूछते हैं, परिवार और जिन्दगी की समस्याएँ इतनी पेचीदी और जटिल हैं कि जबतक इन समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता, तबतक कुछ और करना कठिन लगता है। साधन-भजन में मन लगता नहीं। ध्यान जमता नहीं। धारणा हो नहीं पाती। समाधि तो दूर की बात है। लगता है, इस जीवन में कुछ हो नहीं सकेगा। एक गहन-गम्भीर निराशा ने पूरे जीवन को घेर लिया है। अब आप ही बतावें, हम क्या करें ?"

इन मित्रों की जिज्ञासाओं में गम्भीरता और सच्चाई होती है। यह सही है कि जिन्दगी की समस्याएँ बेहद पेचीदी, ऊबाऊ और जटिल होती हैं। जीवन में सब कुछ अनुकूल ही नहीं होते। और अनुकूलता में हमें सुख मिलता है, इसलिए प्रतिकूलता का दुःख भोगने को भी हम अभिशप्त हैं। जबतक पत्नी नहीं मिली थी, मन बेचैन था। पत्नी मिलीं, तो उनके व्यवहार से मन खिन्न होने लगा। बच्चे नहीं हुए, तो जीवन फीका लगता था। हुए, तो नयी समस्याओं ने दबोच लिया। उनकी शिक्षा-दीक्षा, शील-संयम, शादी-व्याह और नौकरी की समस्याएँ। और जब अपना बुढ़ापा आ गया तब बेटों और बहुओं से मिली उपेक्षा, तिरस्कार या अवमानना से उत्पन्न समस्या। कोई अन्त है जीवन की समस्याओं का ? मुझे तो हर संसारी प्राणी 'पीड़ा का राजकुमार' और दुःख-दर्द की अंतः सलिला नदी-जैसा दीख पड़ता है। जो बाहर से भरा-पूरा, हँसता-खिलखिलाता और ठहाके-कहकहे लगाता मिलता है उसकी जीवन-भूमि को थोड़ा कुरेदते ही, तुरत पीड़ा की—एक अकथ-असीम पीड़ा की—कोई तप्त जलधारा फूट पड़ती है। मन में करुणा भर आती है। प्रभु ! कितनी ज्वाला है फूल से सुन्दर-सुकुमार सुरभित दिखने वाले जगत के इन प्राणियों के भीतर ! कृपा करो, नाथ ! दया करो, करुणाकर ! इनमें छिपे आनन्द को अमृत-धारा की लहर उठा दो, ताकि ये जान लें अपने स्वरूप को, और मुक्त हो जायँ जगज्ज्वाला की जलन से और प्रतिष्ठित हो जायँ आनन्द, परमानन्द के शाश्वत-चिरन्तन कैलास शिखर पर। हमारी जीवन-यात्रा समस्याओं से निपटने में ही समाप्त हो जाती है—'चलते-चलते शाम हो गयी, यूँ ही उमर तमाम हो गयी।"

समस्याओं की विभीषिका से मन का विचलित होना भी स्वाभाविक है। और मन जबतक चंचल-चपल कुरंग की भाँति चौकड़ियाँ लगाता रहेगा, अनुकूलता और प्रतिकूलता के झंझावात में सूखे पत्ते की भाँति उठता-गिरता रहेगा, अपनापन और परायापन के द्वन्द्व में झटके खाता रहेगा, कामिनी और कांचन अर्थात् भोग और वासना की उठती लहरों में गोते लगाता रहेगा, तबतक आनन्द की केवल

कल्पना होगी, आनन्द नहीं मिलेगा, आज की प्लास्टिक पैकेट की संस्कृति में सुखों के प्लास्टिक पुष्प मिलेंगे, आत्म-तृप्ति की कोई सुगन्ध नहीं मिलेगी, जीवन के मंच पर दुःखों के भूत-प्रेत नाचते रहेंगे, किन्तु उस पर आत्मानन्द के शिव-पार्वती का लास्य नहीं होगा, मन के वन में ताप और अनुताप की बाँसुरी बजती रहेगी, उन्मुक्त उल्लास और निश्छल हास के कृष्ण का वहाँ कोई महारास नहीं अवतरित होगा।

जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जाय, तभी हम निश्चिन्त मन से अलौकिक दिव्य आनन्द के संधान में लगेंगे—यह सोचना वैसा ही है जैसे सागर के तट पर खड़ा कोई व्यक्ति यह सोचे कि जरा लहरें थम जायं तब स्नान किया जायगा। यह मूर्खता है, आत्म प्रवंचना है। सागर में नहाना है तो लहरों के बीच ही उतरना होगा सागर में और तन-मन को शीतल कर निकलना होगा उस सागर से। कल के लिए रुकना नहीं होगा। आज और अभी सागर में उतर जाना होगा।

युवैव धर्मशीलः स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्
को हि जानाति कस्माद्य मृत्युकालो भविष्यति॥
(योग वाशिष्ठ)

अर्थात् 'जीवन अनित्य है, क्षण भंगुर है, इसलिए इस युवा काल में ही धर्मशील बनो। कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु होने वाली है!'

तो जीवन की अनन्त बाधाओं, बिध्नों और समस्याओं के बीच ही हमें जीवन के मूल-भूत रस को प्राप्त करने के लिए जोर-शोर से, पूरी तत्परता और निष्ठा से लग जाना होगा।

यह सच है कि हमें पत्नी है, बच्चे हैं, घर-संसार है और इनके कारण अनेक समस्याएँ भी हैं जिनके समाधान के लिए हम रात-दिन परेशान हैं। लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि हम अपने अहंकार के कारण ही यह सोचते हैं कि सभी समस्याओं का समाधान हमें ही करना है। और जब तक अहंकार है, ध्यान जम नहीं सकता। ध्यान तो अहंकार का विसर्जन ही है। अहंकार का गल जाना ही जीवन में ध्यान का घटित हो जाना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी पत्नी और बच्चों से विमुख हो जायँ। नहीं, उनकी देख-रेख हमें करनी होगी। बल्कि पूरी निष्ठा से करनी होगी। लेकिन संसार की सेवा का एक विलक्षण वेद है, एक रोचक रहस्य है, एक विमोहक विज्ञान है। उसे जान लेने पर फिर कोई बाधा नहीं रहती। क्या है वह विज्ञान? स्वामी विवेकानन्द ने समझाया है—"मेरे गुरुदेव कहा करते थे, 'अपने बच्चों के प्रति वही भावना रखो, जो एक धाय की होती है।' वह तुम्हारे बच्चे को गोद में लेती है, उसे खिलाती है और उसको इस प्रकार प्यार करती है, मानो वह उसीका बच्चा हो। पर ज्यों ही तुम उसे काम से अलग कर देते हो, त्यों ही वह अपना बोरा-बिस्तर समेट तुरन्त घर छोड़ने को तैयार हो जाती है। उन बच्चों के प्रति उसका जो इतना प्रेम था, उसे वह बिल्कुल भूल जाती है। एक साधारण धाय को तुम्हारे बच्चों को छोड़कर दूसरे के बच्चों को लेने में तनिक भी दुःख न होगा। तुम भी अपने बच्चों के प्रति यही भाव धारण करो। तुम्हीं उनकी धाय हो,—और यदि तुम्हारा ईश्वर में विश्वास है, तो विश्वास करो कि ये सब चीजें, जिन्हें तुम अपनी समझते हो, वास्तव में ईश्वर की हैं।"

स्वामीजी ने आगे कहा है—"यह सोचना कि मेरे ऊपर कोई निर्भर है तथा मैं किसी का भला कर सकता हूँ, अत्यन्त दुर्बलता का चिह्न है। यह अहंकार ही समस्त आसक्ति की जड़ है, और इस आसक्ति

से ही समस्त दुःखों की उत्पत्ति होती है। हमें अपने मन को यह भली-भाँति समझा देना चाहिए कि इस संसार में हमारे ऊपर कोई भी निर्भर नहीं है। एक भिखारी भी हमारे दान पर निर्भर नहीं। किसी भी जीव को हमारी दया की आवश्यकता नहीं, संसार का कोई भी प्राणी हमारी सहायता का भूखा नहीं। सबकी सहायता प्रकृति से होती है। यदि हममें से लाखों लोग न भी रहें, तो भी उन्हें सहायता मिलती रहेगी। तुम्हारे हमारे न रहने से प्रकृति के द्वार बन्द न हो जायेंगे। दूसरों की सहायता करके हम जो स्वयं शिक्षा लाभ कर सक रहे हैं, यही तो हमारे तुम्हारे लिए परम सौभाग्य की बात है। जीवन में सीखने योग्य यही सबसे बड़ी बात है। जब हम पूर्ण रूप से इसे सीख लेंगे, तो हम फिर कभी दुःखी न होंगे; तब हम समाज में कहीं भी जाकर उठ-बैठ सकते हैं, इससे हमारी कोई हानि न होगी। तुम्हारे चाहे पति हों; चाहे पत्नियाँ हों, तुम्हारे दल के दल नौकर हों, बड़ा भारी राज्य हो पर यदि तुम इस तत्व को हृदय में रखकर कार्य करते हो कि यह संसार मेरे भोग के लिए नहीं है और इसे मेरी सहायता की किंचित आवश्यकता नहीं, तो यह सब रहने पर भी तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी।"[1]

स्पष्ट है कि समस्याएँ रहेंगी ही। लेकिन समस्याओं के बीच ही ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधन-भजन करने हैं, ध्यान करना है। और इसके लिए अनासक्ति का भाव पहले हृदय में लाना होगा और फिर अभ्यास—निरन्तर अभ्यास करते रहना होगा, मन को एकाग्र करने के लिए। कृष्ण ने अर्जुन से मन को वशीभूत करने के उपाय के क्रम में कहा—'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।' कि हे अर्जुन, अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में किया जा सकता है।

किन्तु, प्रश्न है कि अभ्यास कैसे करें? मन को नियंत्रित कर ध्यान में कैसे प्रवेश किया जाय? मुख्य रूप से यह ध्यान राजयोग का विषय है। ध्यान में निश्चय ही हठात् हमारा प्रवेश नहीं हो जाता। ध्यान के पूर्व कुछ भूमिकाएँ हैं। अक्सर हम उन पर ध्यान नहीं देते और सीधे ध्यान के लिए बैठ जाते हैं। और जब ध्यान नहीं जमता तो शिकायत करते हैं कि यह हमारे वश का रोग नहीं। बिना वर्णमाला का अभ्यास किये क्या हम सीधे पुस्तक पढ़ सकते हैं? ध्यान के ग्रंथ में प्रवेश के लिए भी पहले वर्णमाला सीखनी होगी। क्या है वह वर्णमाला?

राजयोग के आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ध्यान सातवें सोपान पर है। इसके पूर्व छः स्थितियाँ हैं जिनपर प्रायः हम ठीक से ध्यान नहीं दिया करते।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी नहीं करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय (धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति आत्मार्पण)—ये पाँच नियम हैं।

ये यम-नियम ध्यान की आधार भूमि हैं—नींव हैं। इनकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए और इनका पालन करना चाहिए। ये वर्णमालाएँ हैं—ध्यान-ग्रंथ की।

किसी एक आसन को सिद्ध कर लेना चाहिए। जिसमें हम देर तक सुख-पूर्वक बैठ सकें—शिर, ग्रीवा और मेरुदण्ड को सीधा रखकर—यही आसन है।

---

1. विवेकानन्द साहित्य : तृतीय खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता—पृ० ६३-६४.

फिर ४-५ बार प्राणायाम के द्वारा नाड़ी-शोधन कर लें।

इन्द्रियों को बहिर्मुखता से हटाकर भीतर समेट लेना प्रत्याहार है।

फिर धारणा—अपने ईष्ट देव की—करनी चाहिए। और तब गुरु द्वारा बताये हुए तरीके से आज्ञा या अनाहत चक्र पर ध्यान करना चाहिए।

योग को चित्त-वृत्तियों का निरोध कहा गया है। वृत्तियाँ क्या हैं। वृत्ति तीन प्रकार की होती हैं-शान्त वृत्ति, घोर वृत्ति और मूढ़ वृत्ति।

जब मन सत्व गुणों से युक्त रहता है तब शान्त वृत्ति जगती है। जप, ध्यान और शास्त्रों के अध्ययन में रुचि उत्पन्न होना शान्त वृत्ति का लक्षण है।

रजो गुण की प्रबलता से मन में घोर वृति और तमोगुण की प्रबलता से मूढ़ वृत्ति जगती है।

जब मन की इन वृत्तियों को हम एकोन्मुख करते हैं—ईश्वरोन्मुख करते हैं—तब हमारी एकाग्रता बढ़ती है और हम निज स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

राज योग में वृत्तियाँ दो प्रकार की कही गयी हैं—क्लिष्ट वृत्ति और अक्लिष्ट वृत्ति। क्लिष्ट वृत्ति के पांच भेद हैं—अविद्या, अस्मिता, राग (प्रेम), द्वेष, और अभिनिवेश (जीवन से प्रेम और मृत्यु से भय)।

अक्लिष्ट वृत्ति के भी पांच भेद हैं—प्रमाण (सम्यक् ज्ञान), विपर्यय (अशुद्ध ज्ञान), विकल्प, निद्रा और स्मृति।

हमें वृत्तियों से अपने को युक्त नहीं करना चाहिए। साक्षी भाव से वृत्तियों का हम अवलोकन करते रहें। तटस्थ रहें उनसे। इस प्रकार वृत्तियों से असम्पृक्त रह कर आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

जब केवल एक वृत्ति—ईश्वर की वृत्ति रहती है तब सविकल्प समाधि होती है और जब कोई वृत्ति नहीं बचती तब निर्विकल्प समाधि होती है। ध्यान की यह चूड़ान्त अवस्था है।

तो हमें पहले अपनी वृत्तियों का नियमन करना होगा। उसकी कला सीखनी होगी, उसका विज्ञान जानना होगा।

श्री रामकृष्ण कहा करते थे—"ध्यान करो—मन में, वन में, या घर के कोनें में।' वे कहते थे—'एकान्त में गये विना कठिन बीमारी अच्छी कैसे होगी? बीमारी तो है सन्निपात की, और जिस कमरे में वह रोगी है, उसी कमरे में इमली का अचार और जल का कुण्डा है! पुरुष के लिए स्त्री इमली का अचार है और भोग-वासना है जल का कुण्डा। इससे बीमारी कैसे अच्छी होगी? (बीमारी की अवस्था तक जैसे रोगी को बदपरहेज से दूर रहना पड़ता है, वैसे ही) कुछ दिन निवास-स्थान से कहीं दूर एकान्त में जाकर साधन-भजन करना चाहिए। तदन्तर नीरोग होकर लौटकर और फिर घर में रहने से भी कोई डर नहीं।"

एकान्त में अभ्यास करने की आवश्यकता श्रीरामकृष्ण ने बार बार दुहरायी है। वे कहते हैं—प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर मन को स्थिर करना चाहिए नहीं तो इधर उधर बहुत कुछ देख-सुनकर मन चंचल हो जाता है। दूध को यदि पानी में मिलाओ, तो वह पानी में बिल्कुल मिल जाता है, परन्तु

दूध को एकान्त में जमाकर, दही बनाकर, उसे मथकर यदि मक्खन निकाल लिया जाय, तो फिर वह पानी के साथ नहीं मिलता, पानी के ऊपर तैरता है। इसी प्रकार जिनका मन स्थिर हो चुका है, वे कहीं भी बैठकर सदा ईश्वर का चिन्तन कर सकते हैं।"[2]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रिय शिष्य को ध्यान करने की कुछ रोचक प्रक्रियाएँ बतायी थीं। मैं उन्हें आपके सम्मुख दुहराना चाहूँगा। उन्होंने कहा था—"प्रतिदिन अकेले ध्यान करना; सब रहस्य स्वयं ही खुल जायगा। विद्यारूपिणी महामाया भीतर सो रही है; इसलिए कुछ जान नहीं सक रहा है। यह कुण्डलिनी ही है वह शक्ति। ध्यान करने के पूर्व जब नाड़ी शुद्ध करेगा, (रेचक-पूरक प्राणायाम द्वारा नाड़ी-शुद्धि की जाती है।—सं०) तब मनही मन मूलाधार स्थित कुण्डलिनी पर जोर-जोर से आघात करना और कहना, 'जागो माँ!' धीरे-धीरे इन सब का अभ्यास करना होगा। भाव-प्रवणता को ध्यान के समय एकदम दबा देना, उसमें बड़ा भय है। जो लोग अधिक भाव प्रवण हैं, उनकी कुण्डलिनी फड़फड़ाती हुई ऊपर तो उठ जाती है, परन्तु वह जितने शीघ्र ऊपर जाती है, उतने ही शीघ्र नीचे भी उतर आती है। जब उतरती है तो साधक को एकदम गर्त में ले जाकर छोड़ती है। भाव-साधना के सहायक कीर्तन आदि में यही एक बड़ा दोष है।"[3]

ध्यान-साधना के रहस्य की ये बातें शास्त्रों में स्पष्ट नहीं मिलतीं। कोई महागुरु ही इन बातों को अपने शिष्यों के सामने करुणा पूर्वक खोलकर रख देता है। स्वामीजी ने अपने उक्त शिष्य से स्वयं कहा था—'सभी साधन-रहस्य क्या शास्त्र में हैं? वे सब गुरु-शिष्य परम्परा से गुप्त भाव से चले आ रहे हैं। खूब सावधानी के साथ ध्यान करना, सामने सुगन्धित फूल रखना, धूप जलाना। जिससे मन पवित्र हो, पहले पहल वही करना। गुरु-इष्ट का नाम करते-करते कहा कर 'जीव-जगत सभी का मंगल हो।' उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, उर्ध्व, अधः सभी दिशाओं में शुभ संकल्प की चिन्ताओं को बिखेरकर ध्यान में बैठाकर। ऐसा पहले पहल करना चाहिए। उसके बाद स्थिर होकर बैठकर (किसी भी ओर मुँह करके बैठने से कार्य हो सकता है)·····ध्यान किया कर। एक दिन भी क्रम न तोड़ना। काम-काज की झंझट रहे तो कम-से-कम पन्द्रह मिनट तो अवश्य ही कर लेना। एकनिष्ठा न रहने से कुछ नहीं होगा।"[4]

अतएव, ध्यान में मन नहीं लगता हो, ध्यान नहीं जमता हो, तब घबड़ाने की जरूरत नहीं है। आप आत्मपरीक्षण करने लगें उस घड़ी। आप टटोलने लगें अपने को, अपने मन को। क्या ध्यान की आपकी तैयारी पूरी हो चुकी है? क्या आपने शक्तियों को समेटने के लिए यम-नियम का पालन शुरू कर दिया है? क्या अहिंसा, सत्य आदि में आप स्थित हो चुके हैं? क्या अहंकार-शून्यता, अनासक्ति, करुणा, क्षमा, प्रेम और अक्रोध के प्रदेश की अपने यात्रा शुरू कर दी है?

आप समझ लें, अहिंसा महान् दैवी गुण है। 'अहिंसा परमो धर्मः' कहा गया है। मन, वाणी और कर्म से किसी को भी आहत नहीं करना ही अहिंसा है। हमें अपने मन में किसी ऐसी विचार-तरंग को ही नहीं उठने देना है जो दूसरों के लिए पीड़ादायक हो। हमें अपनी वाणी को ही इस प्रकार संयमित

2. भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ : रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ० ४६
3. विवेकानन्दजी के संग में : श्री शरच्चन्द्र चक्रवर्ती : श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर : पृ० ३६३.
4. वही पृ० ३६४

करना होगा कि उसके प्रयोग से किसी के मर्म पर चोट न लगे। भगवान बुद्ध ने इसी से सम्यक् वचन पर जोर दिया है।

हमारे मुँह से निकलने वाला हर शब्द एक स्तुति हो, एक स्तवन हो, एक प्रार्थना हो, एक बँदना हो, एक ऋचा हो, एक मंत्र हो।

वह वाणी क्या, जिसमें वंदना की विनम्रता न हो!
वह वाणी क्या, जिसमें प्रार्थना की निरहंकारिता और समर्पिति न हो!
वह वाणी क्या, जिसमें सत्य की मंत्रात्मक मर्यादा न हो!
वह वाणी क्या, जिसमें मैत्री, मुदिता और करुणा की गंगोत्री नहीं फूट रही हो!
वह वाणी क्या, जिसमें हमारे व्यक्तित्व की शिवता और
भद्रता एक चारुता की ऋचा बनकर नृत्य न कर रही हो!

वाणी ईश्वर के द्वारा मनुष्य को दी गयी एक महत्तम विभूति है। आकाश को विस्तार है, बाणी नहीं। पर्वत को उच्चता है, वाणी नहीं। पृथ्वी को गुरुता है, वाणी नहीं। सागर को गहराई है, वाणी नहीं। पुष्पों को सुगन्ध है, सुन्दरता है, सुकुमारता है, वाणी नहीं। ओह, वाणी हमारी दैवी सम्पदा है। इसका प्रयोग हमें बड़ी सावधानी से करना ही चाहिए।

इसी प्रकार मन, वचन और कर्म से हमें सत्य में प्रतिष्ठित होना ही पड़ेगा। श्री रामकृष्ण देव सत्य को कलियुग की तपस्या कहा करते थे। हमें सत्य में स्थित होना है। हमें सत्य को प्राप्त करना है। ब्रह्म सत्य है। ब्रह्म सत्य को सत्य की साधना से हमें जानना होगा। 'सत्यमेव जयते नानृतम्।' तीनों कालों में एक मात्र सत्य ही सुरक्षित रहता है। इसलिए अहिंसा और सत्य योग की नींव हैं।

फिर अन्तर-बाह्य शुचिता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, जो नियम हैं, इनके द्वारा अपने अन्तर-बाह्य जीवन को आध्यात्मिक बना लेना होगा।

हम मन्दिर में स्नान किये बिना नहीं जाते। हमें ध्यान-मन्दिर में जाने के पूर्व यम-नियम आदि के सुधा सरोवर में ठीक से निमज्जित हो जाना पड़ेगा। और तब ध्यान स्वतः घटित होगा।

एक बात समझ लें।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है; यह एक आत्मिक आध्यात्मिक घटना है।

ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान हो जाता है।

धरती, हवा, सूर्य और पानी से पोषक तत्त्व लेकर बीज पौधा बनने की तैयारी करता है। फूल का उसकी डाल पर खिल जाना तो एक चमत्कार है, एक घटना है।

यम-नियमादि से हम अपने आध्यात्मिक जीवन की तैयारी करते हैं, फिर ध्यान का फूल हमारे एकाग्र मन की डाल पर अचानक किसी दिन, किसी पुण्य क्षण में, किसी शुभ लग्न में, किसी महत्तम मुहूर्त में फूट पड़ता है। हम उसकी सुगंध से धन्य हो उठते हैं, उसकी खुशबू से निहाल हो उठते हैं, उसकी महिमा से मुग्ध हो जाते हैं, खो जाते हैं, आत्मस्थ हो जाते हैं।

फूल का खिल जाना पौधे का अपनी पूर्णता को पा लेना है।

ध्यान का घटित हो जाना, हमें अपने स्वरूप को, अपनी आत्मा को, अपनी पूर्णता को पा लेना है।

किसी पौधे में कब फूल खिलेगा, पौधा नहीं जानता। वह केवल मिट्टी, हवा, जल और सूर्य से विभिन्न तत्त्व लेकर अपनी तैयारी में लगा रहता है।

हम में ध्यान कब घटित होगा, हम नहीं जानते। हमें तो अनासक्ति, अहंकार-हीनता, सत्य, अहिंसा, क्षमा, करुणा, मुदिता आदि के भावों से युक्त होकर मन को वृत्तियों से मुक्त करना है।

हर पौधे में फूल खिलता है—देर या सवेर।

हर साधक में ध्यान घटित होता है—कभी न कभी। हम उदास क्यों हो? हमें तो केवल पूरी निष्ठा से, पूरे पुरुषकार से, अपनी समग्रता से उस स्थिति की केवल तैयारी करनी है जिसमें ध्यान के मन्दिर का द्वार खुलता है।

यहाँ मैं स्वामी विवेकानन्द जी की एक शिष्य साधक के प्रति दी गयी आश्वासन-वाणी दुहराना चाहूँगा। स्वामी जी ने कहा था—'कालेनात्मनि विन्दति'—समय पर अवश्य ही होगा। अन्तर इतना है कि किसी का जल्द और किसी का जरा देर में होता है। लगे रहना चाहिए, चिपके रहना चाहिए। इसी का नाम यथार्थ पुरुषकार है। तेल की धार की तरह मन को एक ओर लगाये रखना चाहिए। जीव का मन अनेकानेक विषयों से विक्षिप्त हो रहा है, ध्यान के समय भी पहले पहल मन विक्षिप्त होता है। मन में जो चाहे क्यों न उठे, क्या भाव उठ रहे हैं, उन्हें उस समय स्थिर हो देखना चाहिए। उसी प्रकार देखते-देखते मन स्थिर हो जाता है और फिर मन में चिन्ता की तरंगे नहीं रहतीं। वह तरंग समूह ही है मन की 'संकल्पवृति'। इससे पूर्व जिन विषयों का तीव्र भाव से चिन्तन किया है, उनका एक मानसिक प्रवाह रहता है, इसलिए वे विषय ध्यान के समय मन में उठते हैं। उनका उठना या ध्यान के समय स्मरण होना ही इसका प्रमाण है कि साधक का मन धीरे-धीरे स्थिरता की ओर जा रहा है। मन कभी-कभी किसी भाव को लेकर एकवृत्तिस्थ हो जाता है। उसी का नाम है सविकल्प ध्यान। और मन जिस समय सभी वृत्तियों से शून्य हो जाता है उस समय निराधार एक अखण्ड बोधरूपी प्रत्यक् चैतन्य में लीन हो जाता है। इसी का नाम वृतिशून्य निर्विकल्प समाधि है। हमने श्रीरामकृष्ण में ये दोनों समाधियाँ बार-बार देखी हैं। उन्हें ऐसी स्थितियों को कोशिश करके लाना नहीं पड़ता था बल्कि अपने आप ही एकाएक वैसा हो जाया करता था। वह एक आश्चर्यजनक घटना होती थी।"[5]

स्वामीजी की ध्यान विषयक यह आश्वस्ति-वाणी उन तमाम साधकों के लिए है जो आरंभ में ध्यान के नहीं जमने से निराश हो जाते हैं। एक कहानी सुनिए।

एक राजा था—बड़ा कृपण, महा कंजूस। एक पैसा दान देना उससे सम्भव नहीं था। उसके दरबार में एक दिन एक नर्तकी आयी। उसने राजा से दरबार में नृत्य दिखाने की अनुमति चाही। राजा ने कहा—तुम चाहो तो नृत्य कर सकती हो, लेकिन शर्त यह है कि मैं एक पैसा भी नहीं दूँगा, और न तेल—बत्ती का इन्तजाम ही करूँगा। दूसरे दर्शक तुम्हें जो दे दें, उसी से तुम्हें सन्तोष करना पड़ेगा। नर्तकी ने शर्त मंजूर कर ली।

नगर के लोगों ने रोशनी की व्यवस्था कर दी। नृत्य शुरू हुआ। वादक सितार बजाने लगा। नर्तकी के पाँव के नूपुर थिरक उठे। एक मादक लय में उसके चरण ताल देने लगे। उसके अंग-अंग के

५. विवेकानन्द जी के संग में··· ···पृ० ३६२—६३

मोड़ से एक विलक्षण संगीत फूटने लगा, उसके चरणों के ताल-ताल से एक विचित्र रस-निर्झर फूटने लगा। नीचे अबीर और कुंकुम बिछे थे। उस नर्तकी के चरणों की थाप से अबीर उड़ता तो कभी हजार हजार कमल ऊपर उग आते और, कभी हजार-हजार गुलाब ऊपर लहराने लगते। अजीब सम्मोहक और हियहारी नृत्य था उस नर्तकी का। दरबार दर्शकों से खचाखच भरा था। रह रहकर लोग आनन्द और उल्लास की उमंग से भरकर तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण को गुंजित-अनुगुंजित कर रहे थे। राजा स्वयं उस नृत्य पर मुग्ध था। उसकी बगल में बैठा उसका पुत्र राजकुमार मस्ती में झूम-झूम उठता। ऊपर झरोखे में बैठी राजा की पुत्री इस नृत्य पर बार-बार मचल रही थी। कहीं से एक साधु भी आकर नृत्य देख रहा था और नर्तकी की अंगभंगिमाओं पर आत्म विस्मृत हो रहा था।

जाड़े की ठंढ भरी रात थी : एक पहर रात बीत गयी। किसी ने एक पैसा नहीं दिया : दो पहर रात बीत गयी। किसी ने एक अधेला नहीं दिया। और नर्तकी आत्मलीन हो विभिन्न मुद्राओं और भंगिमाओं में नाचती रही। रात का तीसरा पहर भी बीत गया। किसी ने एक पैसा भी नहीं बरसाया। जब राजा ही हाथ दबाये बैठा था तब प्रजा कुछ देने का साहस कैसे करती ? नर्तकी थक कर चूर-चूर हो गयी। कुछ मिलते नहीं देख कर उसकी हिम्मत भी पस्त हो रही थी। गहन निराशा, हताशा और उदासी से भर कर उसने अपने चरण के तालों से अपने वादक से कहा—

इन कृपण दर्शकों के सम्मुख,
नाचती रही अब तक अभंग।
तन टूट रहा, मन टूट रहा,
अब टूट रहा है अंग-अंग।
अब क्या नाचूँ ! कितना नाचूँ !
किसके सम्मुख नाचूँ ! बोलो !
वादक ! करने दो बन्द नृत्य का,
अब यह निष्फल राग रंग।

लेकिन वादक अधीर नहीं हुआ था। उसने अपने सितार की स्वर-लहरी में नया अर्थ भरकर कहा—

क्या हुआ, न श्रम-फल मिला अगर ! मत हो निराश, मत कर मलाल,
अब थोड़ी-सी ही रात बची, आने वाला है प्रात-काल।
कोई श्रम व्यर्थ नहीं जाता, यह नियम प्रकृति का है अटूट
नर्तकी, नाचती रहो मुग्ध, लय भंग न हो, टूटे न ताल।

कहा वादक ने—हे नर्तकी, तीन पहर रात तो बीत ही गयी। अब तो केवल एक पहर रात बाकी है। फिर तो सूर्योदय हो ही जायगा। इतनी थोड़ी देर के लिए अपना नृत्य बंद कर देना ठीक नहीं। हर मिहनत का कोई न कोई फल होता ही है। मनोनुकूल फल नहीं मिलने मात्र से इतनी जल्दी अधीर और निराश हो जाना ठीक नहीं।

वादक का यह स्वर सुनते ही नर्तकी के पाँव फिर पूरी उमंग से थिरक उठे और अंगों की बिजली फिर पल-पल कौंधने लगी।

और इसी समय लो, एक चमत्कार हो गया। उस दर्शक साधु ने अपना एक मात्र कम्बल तुरंत नर्तकी के ऊपर फेंक दिया। राजकुमार ने अपना दुशाला उतार फेंका नर्तकी के ऊपर और राजकुमारी ने झरोखे से अपने गले से हीरे का हार उतार फेंका नर्तकी की ओर। फिर तो अन्य दर्शकों ने भी दान की वर्षा कर दी। राजा यह सब देख हैरान हो गया। क्या हो गया लोगों को अचानक! उसने साधु से अपना एकमात्र कम्बल फेंकने का कारण पूछा। साधु ने कहा—"जीवन भर के तप के बावजूद आत्म-साक्षात्कार नहीं होने से आज मैं पुनः गृहस्थी बसाने की सोच रहा था। लेकिन सितारवादक ने गुरु बनकर मुझे ज्ञान दे दिया। सारा जीवन तो तप में चला ही गया। थोड़े दिन और बचे हैं; फिर गृहस्थी क्या बसाना? क्यों नहीं तप में ही जीवन होम कर दूँ! इसी से मैंने कम्बल दे दिया।"

राजकुमार ने कहा—"मैं आज आपकी हत्या कर स्वयं राजा बन जाने की सोच रहा था। आप तो अपने जीवन में मुझे राजगद्दी देंगे नहीं। लेकिन इस वादक ने ज्ञान दे दिया। अब तो आप थोड़े ही दिन बचेंगे। फिर इतने के लिए मैं पितृहंता का दोष क्यों लूँ? इसी से दुशाला फेंक दिया नर्तकी के ऊपर।"

राजकुमारी ने बताया—आज मैं घर से निकल भागने वाली थी। जानती हूँ, धन के लोभ के कारण आप मेरा विवाह करेंगे नहीं। मेरा यौवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है। अतः स्वयं कहीं विवाह कर लेती। लेकिन वादक ने बताया कि अधीर नहीं होना चाहिए। आप भी तो बहुत दिनों तक बचने वाले हैं नहीं! अतः थोड़ी और प्रतीक्षा क्यों न कर लूँ! घर से निकल कर व्यर्थ कुलटा क्यों कहाऊँ? यही सोचकर मैंने अपना निर्णय बदल दिया और प्रसन्न होकर हीरे का हार नर्तकी की ओर फेंक दिया।"

राजा को भी ज्ञान हो आया। उसने दूसरे ही दिन राजकुमारी का विवाह रचाया, राजकुमार को राजगद्दी दी, वादक और नर्तकी को पर्याप्त उपहार दिये और स्वयं वन को चला गया तपस्या करने।

तो मेरे मित्रो! हमारी साधना का फल हमें अब तक नहीं मिला, इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। बल्कि नर्तकी की भाँति दुहरी उमंग से अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। फल तो मिलेगा ही। ध्यान तो घटेगा ही। आत्म-साक्षात्कार का फूल तो खिलेगा ही। हम केवल लय भंग न करें, हम केवल अपना ताल टूटने नहीं दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी महाराज अधीरता से उबार कर हमें अपनी साधना की लय और ताल में बाँधे रखें जिससे हम आत्म साक्षात्कार कर शाश्वत शान्ति और चिरन्तन आनन्द में उतर सकें—यही उनसे हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। जय श्री रामकृष्ण।

[अनेक पाठकों के आग्रह पर वि. शि. के मई, १९८३ अंक में प्रकाशित सम्पादकीय सम्बोधन का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है।—सं०]

# स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

स्वामी सदाशिवानन्द

हमलोगों के साथ एक अत्यन्त कृशकाय युवा कार्यकर्ता था, जिस पर स्वामीजी की दृष्टि पड़ी। हमलोगों पर उनकी कितनी कृपा थी उसे इस लड़के के उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है। यह युवक बंगाल के किसी भीतरी प्रदेश का था और वाराणसी में असहाय पड़ा हुआ था। भूख एवं गरीबी से पीड़ित होकर कार्यकर्ता के रूप में सेवाश्रम में शामिल हो गया था। किन्तु वह था बहुत रुग्ण एवं दुर्बल। एक दिन वह स्वामीजी से मिलने गया। स्वामीजी ने इसके सम्बन्ध में पूछताछ की तथा उससे कहा कि तुम प्रतिदिन मेरे साथ भोजन करो—देखो, तुम अत्यन्त दुर्बल हो और तुम्हें कार्य करना है, अतः यह जरूरी है कि तुम अच्छा खाना खाओ। तुम प्रत्येक दिन आकर मेरे साथ भोजन किया करो, नहीं तो कम से कम दोपहर का खाना मेरे साथ खाया करो।

सेवाश्रम का अत्यधिक कार्य रहने के कारण वह लड़का स्वामीजी के लिए दोपहर के भोजन का जो नियत समय था, उस पर पहुँच नहीं पाता था; और इधर स्वामीजी से बराबर अनुनय किया जाता था कि वे समय पर भोजन करें ताकि उनका दबा हुआ रोग-डायबिटीज आदि फिर जोर न पकड़ ले। चिकित्सक तथा उनके गुरुभ्रातागण उन्हें अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखने के लिए प्रायः अनुरोध करते रहते थे और वे भी सहमत हो जाते थे; किन्तु उस लड़के के प्रति जो उनका मातृ-सुलभ प्रेम था, उस कारण वे उनके अनुरोध एवं अपने स्वास्थ्य को भूल जाते थे। दोपहर के खाने के पूर्व अत्यन्त चिन्तित होकर उस लड़के की खोज-खबर लेते और उसकी राह देखते। अत्यत व्यग्र होकर फर्श पर चहलकदमी करते हुए सड़क तथा प्रवेश द्वार की तरफ देखते कि वह कहीं आ तो नहीं रहा है। अगर वे किसी से मिलते तो तुरत पूछते, "वह आया कि नहीं ? अभागा लड़का ! आज इतनी देर क्यों कर दी ? वह इतना कमजोर है और अभी तक कुछ नहीं खाया है। इतना कमसिन और कमजोर है फिर कितना काम करना है !" और अन्त में जब वह लड़का तेज कदमों से यहाँ पहुँचता तो स्वामीजी का चेहरा एक बार फिर बदल जाता। उनके चेहरे पर संतोष तथा प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती, जैसा बहुत दिनों के विछोह के बाद माँ के पुत्र से मिलने पर होता है। एकदम प्रसन्नमुख होकर उस युवक से पूछते, "क्या रे, आज इतनी देर क्यों कर दी ? मैं जानता हूँ, तुम काफी व्यस्त रहते हो। किन्तु आज सुबह नाश्ता किया था कि नहीं ? देखो, मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है, तुम्हारी ही राह देख रहा था। अच्छा! हाथ-पैर धोकर जल्दी से खाने पर आ जाओ। देखो, कितनी देर हो गयी है, और तुम तो जानते हो कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। अगर मैं समय पर खाना नहीं खाता हूँ तो मेरी बीमारी बढ़ने की संभावना रहती है। लेकिन, तुम भी क्या करोगे, काम का बोझ ही इतना है कि तुम्हें देर हो जाती है, मैं इस बात को समझता हूँ।"

स्वामीजी के पीछे चलकर वह भी भोजन कक्ष में जाता और अन्य लोगों के साथ बैठता। लेकिन खाने के समय, स्वामीजी उस लड़के पर बराबर

नजर रखते और जो कोई भोजन वे अच्छा और स्वादिष्ट समझते, उसे अपनी थाली में से उस लड़के को देते। वहाँ उपस्थित लोग देखते, स्वामीजी बिल्कुल नहीं खा रहे हैं, किन्तु उस लड़के को अत्यंत प्यार से खाते हुए देख रहे हैं। तब लोग उनसे अनुरोध करते, "स्वामीजी आप भी कुछ खाइये, आज तो आप कुछ भी नहीं खा रहे हैं।" लेकिन कौन सुनता है ? स्वामीजी तो स्वयं को भूल चुके हैं, उनके लिए वह लड़का बाल-गोपाल है।

एक दिन संध्या समय में स्वामीजी एक चारपाई पर तथा दूसरी पर स्वामी शिवानन्द महाराज बैठे थे। कमरे में और भी सज्जन थे जो चुपचाप दोनों के बीच चल रहे हास-परिहास का आनन्द ले रहे थे। स्वामीजी प्रफुल्लवदन देवदूत की तरह थे, जिनका मुखमण्डल बाल-सुलभ प्रसन्नता एवं आमोदपूर्ण हास्य से प्रदीप्त था, जो उनकी आँखों से आवर्त एवं चक्रवात के रूप में कमरे में चारो तरफ निःसृत हो रहा था। स्वामीजी ने स्वामी शिवानन्द को सम्बोधित करते हुए कहा, 'आप क्या कह रहे हैं महाशय ? तो आपके विचार से मैं शुक्राचार्य हूँ—दैत्यगुरु ! क्या, महापुरुष, ठीक है कि नहीं ? हा-हा ?—मैंने ठीक कहा न ?" और एक बार फिर वे ठहाका लगाकर हँस पड़े। चेहरे से अनेक भाव-भंगिमा बनाते हुए वे हँसी के स्वर को ऊँचा उठाते गये; कमरे का वायुमंडल उस उच्च स्वराघात से झंकृत हो उठा और हमलोग उनकी इस आनन्दमय एवं आमोदपूर्ण मनःस्थिति को श्रद्धा एवं भय के साथ निहारते रहे।

स्वामीजी की आँख की एक नस किसी प्रकार से क्षतिग्रस्त हो गयी थी जिसका असर उनकी दृष्टि पर पड़ा था। इसलिए उनकी तुलना शुक्राचार्य से की गयी, जो एकाक्ष थे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी प्रचार के लिए विदेश गये थे और वहाँ उन्होंने विदेशियों को अपना शिष्य बनाया था। इसलिए उन्होने यह तुलना दैत्यों के एकाक्ष गुरु से की। स्वामी शिवानन्द इस आमोद एवं आनन्द के वातावरण को और उकसाते हुए बोले, "हाँ महाराज, यह निःसंदेह सत्य है।" यह निश्छल हँसी एवं हास्यकर आमोद-प्रमोद का वातावरण था। इस हास्य ने संक्राकम होकर पूरे वातावरण में व्याप्त होकर हम सभी को आनन्द से ओत-प्रोत कर दिया।

धर्म का अर्थ हम साधारणतः लेते हैं—अपवित्र, दुबली-पतली काया मैला, उदास एवं भावशून्य मुखमण्डल जो कभी भी मुस्कुराता नहीं; वह जो प्रसिद्ध शास्त्रों से उद्धृत किये हुए आडम्बर पूर्ण वाक्यांशों की दुहाई देकर सबसे अलग-थलग रहता हो। लेकिन स्वामीजी इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य के स्वभाव का हास-परिहास, प्रसन्नता एवं विनोद से परिपूर्ण पक्ष कम महत्व का नहीं है। वे प्रायः कहते थे, "विनोदप्रियता मेधाविता की पहचान है।" और इस कथन की पुष्टि अपने ही जीवन में व्यक्त हास-परिहास एवं विनोद से करते थे।

उनके इस तीव्र आमोद-प्रमोद को देखकर मैं अक्षरशः भयभीत हो गया था और ज्योंही मैं उनका चरण-स्पर्श करने के लिए गया, वे जोर से अट्टहास करते हुए बोले, "हा ! हा ! तो तुम हो 'वैष्णव'। अच्छा देखें तुम रामानुजी लोग किस तरह प्रणाम निवेदन करते हो।" किसी अन्य दिन वे कहते, "अरे। नहीं, नहीं, छोड़ो इसकी कोई जरूरत नहीं है।" किन्तु आज तो वे बिल्कुल दूसरे ही मूड में थे। स्वामी शिवानन्द बीच में हस्तक्षेप करते हुए बोले, "नहीं, स्वामीजी, वह गठिया का रोगी है, और उसके शरीर के जोड़ कड़े हैं—इस तरह उससे साष्टांग नमस्कार करवाना क्रूरता होगी। इस पर स्वामीजी बोले, "नहीं, वह कोई बात नहीं है। यह उसके लिए अच्छा होगा और रोग से उसे छुटकारा मिलेगा। आओ, मेरे बच्चो ! तुम बगैर संकोच के साष्टांग प्रणाम कर सकते हो।"

मैं ने वैसा ही किया, क्योंकि यह मेरा चिर अभिलाषा थी। अन्यथा यह अभिलाषा पूरी नहीं हो पाती, क्योंकि उनके नाराज होने का भय रहता था।

ऐसे हल्के वातावरण में एक ब्रह्मचारी ने केदारनाथ मंदिर के महंत के आने की सूचना दी जो स्वामीजी से व्यक्तिगत साक्षात्कार के लिए पधारे थे। स्वामीजी का मुखमण्डल तुरत सौम्य एवं गंभीर हो गया तथा आकृति तेजस्वी। महंतजी दूसरे कमरे में थे। स्वामीजी, स्वामी शिवानन्द महाराज के साथ वहां गये और हमलोग भी पीछे-पीछे गये। श्रद्धेय महंतजी ने "नमो नारायण" कहकर अभिवादन किया तथा संस्कृत में स्तोत्र पाठ किया। महंतजी दक्षिण भारतीय बोली में बोल रहे थे और एक सिंहली संन्यासी उसे अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे। स्वामीजी भी उपयुक्त ढंग से प्रत्युत्तर दे रहे थे। महंत ने कहा, "स्वामीजी आप शिवावतार हैं। आपका आगमन मानवजाति की मुक्ति के लिए हुआ है। आपकी अद्भुत शक्ति जो यूरोप और अमेरिका में अभिव्यक्त हुई, वह मानव सभ्यता के इतिहास में अद्वितीय है। आपने प्राच्य देश की ध्वजा पाश्चात्य लोगों के सामने ऊँची कर रखी। प्रत्येक हिन्दू तथा प्रत्येक सन्यासी आपके इस कार्य से गौरवान्वित हुआ। आपके द्वारा वेद के महान सत्यों की व्याख्या एवं उपदेश तथा उन उपदेशों के विश्वव्यापी उपयोग के संबंध में आपके मार्ग दर्शन ने हम सभी संन्यासियों और विशेषकर सभी हिन्दुओं को आपके प्रति कृतज्ञ बना दिया है।" सन जैसे सफेद बाल वाले अस्सी वर्षीय वृद्ध महात्मा जिनका ज्ञान एवं आध्यात्मिक प्रबोध उनकी लम्बी आयु के समान ही महान था, इस प्रकार कहते चले गये।

स्वामीजी प्रत्यक्षतः भाव से द्रवीभूत हो गये और मधुर स्वर में बोले, "महाराज, मैं बहुत अधिक कुछ नहीं कर सका हूँ। जो थोड़ा बहुत कार्य हुआ है, वह सब ईश्वर की कृपा है। यह उन्हीं की इच्छा थी तथा उन्हीं की अभिव्यक्ति। यदि इसमें कुछ महानता है, तो वह मेरी तनिक भी नहीं। वस्तुतः यह शरीर तो उनका यंत्रमात्र है। आप वास्तव में अपने इस साधुजीवन में प्राचीन पराविद्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। आपके भीतर महान ज्ञान का प्रकाश है। यदि आप जैसे महात्मा का आशीर्वाद तथा कृपा की भावना मेरे प्रति रही तो इस प्रकार के तथा इससे भी महान कार्य बिना कठिनाई के हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त आप केदारनाथ मंदिर के प्रधान पुजारी हैं। आप ही शिवावतार हैं। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, एक तुच्छ व्यक्ति।"

महंत ने कहा, "जब आप सेतुबंध रामेश्वरम् के आगे उत्तर की तरफ अग्रसर हो रहे थे तो हमारे प्रधान केन्द्र के संन्यासियों तथा लोगों ने आपको ससम्मान मठ में लिवा लाने के लिए एक पालकी भेजी थी। किन्तु उस समय आप श्रम से क्लांत थे, समुद्र की तरह अपार जन समूह आपके दर्शन के लिए उपस्थित था, अतः आप हमारे निमंत्रण को स्वीकार नहीं सके। इसलिए हमारे मठ के महात्मा तथा साधुगण बहुत दुःखी हुए थे। इस दुःख को कम करने के ख्याल से उनलोगों ने तार से यहाँ वाराणसी मुझे सूचित किया कि अपने दल-बल के साथ आपको यहाँ के मठ में कम से कम एक दिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित करूँ। वृद्ध एवं श्रद्धेय महंत के नम्र निवेदन को सुनकर वे बिलकुल बालक जैसे हो गये और अत्यंत नम्रतापूर्वक बोले, "महाराज, अगर आपकी ऐसी इच्छा थी तो आपका केवल आदेश भर होता अथवा किसी के द्वारा सूचना भिजवा देते। मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका निमंत्रण स्वीकार करता। आपको इतना कष्ट उठाने की जरूरत नहीं थी। खैर, मैं निश्चय ही आऊँगा। अगले दिन सुबह दस या ग्यारह बजे के करीब स्वामीजी, स्वामी शिवानन्द तथा अन्य लोग महंत के मठ पर उपस्थित हुए।

उस मठ में उस समय श्रीलंका के एक बौद्ध भिक्षु रह रहे थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से पूछा, "महाशय, आपकी इस संबंध में क्या धारणा है कि संसार के सभी धर्मों में सिद्ध पुरुष हो चुके हैं?" इस पर स्वामीजी ने न केवल स्वीकारात्मक उत्तर दिया, बल्कि अनेक उदाहरणों द्वारा इसकी पुष्टि की। उन्होंने और भी कहा, 'यहाँ तक कि अतिनिन्दित वामाचार तंत्र मार्ग में भी कई महान सिद्ध पुरुष हो चुके हैं। लेकिन आप जानते हैं, हमारे गुरु महाराज (श्रीरामकृष्ण) कहा करते थे कि यह बहुत ही गंदा मार्ग है।" ऐसा लग रहा था कि भिक्षु स्वामीजी के उत्तर से संतुष्ट था। इसके बाद महंतजी ने सभी को बहुत शानदार ढंग से भोजन कराया।

अपराह्न बेलामें महंतजी स्वामीजी को एक दूसरे कक्ष में ले गये जिसमें उनके गुरु तथा उनके पूर्ववर्ती गुरुओं की प्रतिकृतियाँ थीं; जिनके नाम तथा विशेषताओं का उन्होंने उल्लेख किया। उसके बाद वे दो गेरुआ वस्त्र ले आये। एक को उन्होंने स्वामीजी की कमर में लपेट दिया तथा दूसरे को उनके शरीर के ऊपरी हिस्से में ओढ़ा दिया। महंतजी अत्यंत आह्लादित होकर बोले, "आह! आज मैंने एक सच्चे दण्डी संन्यासी की सेवा कर उन्हें तृप्त किया।"

उसके बाद महंतजी के आग्रह पर स्वामीजी अन्य लोगों के साथ केदार नाथ मंदिर गये। स्वामीजी के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान जताते हुए, केदारनाथ की आरती की गयी, यद्यपि वह आरती का निर्धारित समय नहीं था। लेकिन ज्योंही स्वामीजी मंदिर के बाह्य कक्ष में पहुँचे, जहाँ गंगा की तरफ मुख किये नन्दी की मूर्ति है ठीक शिव लिंग के सामने, त्योंही वे समाधिस्थ हो गये—बाह्यज्ञान शून्य, शान्त एवं निश्चेष्ट। वे एक कदम भी आगे न बढ़ सके, बिल्कुल मूर्तिवत खड़े रहे। उनके पैर के मौजे भींग चुके थे, लेकिन कोई भी उसे खोलकर हटाने के लिए आगे नहीं बढ़ा। क्योंकि वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी अन्तर्जगत में प्रविष्ट हो चुके थे, जहाँ बाह्यजगत की क्रियाएँ स्वतः रुक जाती हैं। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "नरेन के शरीर में शिव का वास है।" वे और भी कहते थे कि वह सप्तऋषियों में से एक है, जो उनके आदेश पर धरतीलोक पर आया है। यह हमलोगों का सौभाग्य था कि हमने उनके भीतर के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति देखी। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति ने उस दैवी उपस्थिति की अनुभूति की।

मंदिर से बाहर आने पर भी स्वामीजी पर दैवी भावावेश था ही। बहुत ही आहिस्ते हमलोग मंदिर से बाहर आये। स्वामी शिवानन्दने स्वामीजी को अत्यन्त सावधानीपूर्वक गाड़ी में बिठाया ताकि वे गिर न पड़े और उन्हें चोट न लग जाय। गाड़ी धीरे-धीरे चल रही थी, क्रमशः स्वामीजी प्रकृतिस्थ हुए। गाड़ी जब एक छत्र (जहाँ मुफ्त में भोजन बाँटा जाता है) के पास से गुजर रही थी तो वे बालक की तरह टूटी-फूटी तमिल में चिल्ला उठे—"नोट—कोट-चेट्टी।" (क्रमशः)

□

श्रद्धावान बनो, वीर्यवान बनो, आत्मज्ञान प्राप्त करो और परहित में अपना जीवन अर्पण करो—यही मेरी इच्छा और आशीर्वाद है।

—स्वामी विवेकानन्द

एक साक्षात्कार

# स्वामी गम्भीरानन्दजी के सान्निध्य में

—अमिय कुमार बन्द्योपाध्याय

(अमिय कुमार बन्द्योपाध्याय रामकृष्ण मठ के दीक्षित भक्त हैं एवं प्रति बुधवार को बेलुड़ मठ आते हैं। पूज्यपाद गंभीरानन्द महाराज के साथ उनका निकट सम्पर्क था। वे आनन्द बाजार पत्रिका के एक वरिष्ठ सांवादिक एवं प्रसिद्ध साहित्यिक हैं—सं०)

रामकृष्ण-वेदान्त आन्दोलन के इतिहास में सम्प्रति तीन बड़ी घटनाएँ घट चुकी हैं—श्री रामकृष्णदेव के आविर्भाव का सार्द्धशतवर्ष, रामकृष्ण संघ की स्थापना का शतवर्ष एवं स्वामी विवेकानन्द की १२५ वीं जन्म-वार्षिकी। इस उपलक्ष्य में मेरे मन में कुछ जिज्ञासाएँ उठी थीं। उन जिज्ञासाओं को दस प्रश्नों के रूप में मैंने स्वामी गम्भीरानन्द जी के समक्ष पेश किया था। उन्होंने उन सभी प्रश्नों के उत्तर दिये थे। नीचे मेरे दस प्रश्न तथा स्वामी गम्भीरानन्द जी के उत्तर सजाकर दिये गये हैं।

**अमिय :** महाराज, मेरा पहला प्रश्न इस प्रकार है। 'धर्म तथा आध्यात्मिकता'—ये दो शब्द अतिशय प्रयोग के कारण पुराने हो गये हैं। साधारणतः लोगों के मन में इन दोनों शब्दों के साथ दो धारणाएँ जुड़ी हुई हैं—अलौकिक चमत्कार एवं जागतिक समृद्धि। लोग सोचते हैं कि साधु-सन्तों के पास जाने से विभिन्न असम्भव क्रिया-कलाप देखने में आयेंगी, परीक्षा में सफलता मिलेगी, व्यवसाय में उन्नति होगी, कार-बंगला होगा इत्यादि। इन धारणाओं का प्रभाव एवं प्रकोप अति व्यापक है। श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं के साथ इनका कोई सम्पर्क नहीं है। श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने धर्म तथा आध्यात्मिकता को नयी मर्यादा दी है, नया तात्पर्य एवं मूल्यबोध दिया है। वे मूल्यबोध क्या हैं? रामकृष्ण विवेकानन्द के जीवन एवं साधना के आलोक में धर्म एवं आध्यात्मिकता से हमलोग क्या समझते हैं?

**स्वामी गम्भीरानन्द जी :** धर्म शब्द का धातुगत अर्थ है—धारणात् धर्म—जो धारण करे अर्थात् जो समाज को धारण करके रहे एवं प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूल में अवस्थान करे। तुम्हारा प्रश्न समाज-धर्म को लेकर नहीं है। व्यक्तिगत जीवन में धर्म से क्या समझते हैं, तुम वही जानना चाहते हो। मनुष्य की जो वास्तविक सत्ता है, वही उसका धर्म है। इस सत्ता के संबंध में जो जितना ज्ञानवान है, वह उतना ही धार्मिक है। आल्डस हक्सले ने एकबार कहा था, प्रत्येक मानव का एक न एक दार्शनिक विचार (Metaphysical idea) होता है और उसके ऊपर ही उसकी जीवन-धारा निर्भर करके चलती है। जगत की मूल सत्ता क्या है! मेरी मूल सत्ता क्या है? इन दोनों के बीच क्या संबंध है? इन मौलिक प्रश्नों का समाधान जो व्यक्ति जितना कर पाया है उसका जीवन उतना सफल हो पाया है। श्री रामकृष्ण ने कहा है, मानव जीवन का उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति है। धर्म-जीवन में आगे बढ़ने के लिए ईश्वर के संबंध में एक

स्पष्ट धारणा चाहिए। कोई-कोई व्यक्ति भगवान को एक ऐसे पुरुष अथवा नारी के रूप में सोचते हैं, जो पूर्ण ज्ञानवान एवं सर्वशक्ति सम्पन्न हैं। एकदम निम्न स्तर के लोग अपने आपको भगवान से पूर्ण तथा पृथक एवं देहधारी मानते हैं। द्वितीय स्तर के लोग अपने आप को भगवान का अंश समझते हैं एवं जो उच्च चिन्तनशील व्यक्ति हैं वे भगवान को सच्चिदानन्द रूप में पाते हैं तथा अपनी सत्ता को उस सत्ता में विलीन कर उसके साथ एक हो जाते हैं। इन तीनों स्तरों की बात हमलोग महावीर जी के श्रीमुख से उच्चारित एक श्लोक में पाते हैं। एक बार श्री रामचन्द्र जी ने उनसे प्रश्न किया, मुझको तुम किस दृष्टि से देखते हो? हनुमान जी इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—

देह बुद्धया त्व दासोऽहं जीव बुद्धयात्वंदंशकः ।
आत्मबुद्धया त्वमेकोहमिति में निश्चिता मतिः ॥

इसका तात्पर्य है: देह बुद्धि की अवस्था में मनुष्य द्वैतवादी होता है। उसके बाद जीव बुद्धि की अवस्था में अर्थात् मैं केवल शरीर नहीं हूँ, मेरे अन्दर आत्मा नाम की एक चीज है एवं भगवान इन सभी आत्माओं में परिव्याप्त हैं—इस अवस्था में मनुष्य विशिष्टाद्वैतवादी होता है और जब उसे बोध होता है—मैं शरीर नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ अर्थात् ससीम कुछ नहीं हूँ, तब वह अनन्त, सच्चिदानन्द ब्रह्म में लीन हो जाता है। श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द ने इसी दृष्टिकोण का अवलम्बन कर विभिन्न स्तरों के लोगों के लिए विभिन्न प्रकार के उपदेश दिये हैं।

विभिन्न व्यक्तियों एवं समाजों के धर्म उनके जीवन का गति नियमित तथा अर्थपूर्ण करते हैं। इसको समझने पर मानव-जीवन के वैचित्र्य एवं विच्छेद के बीच एक समन्वय सूत्र पाया जाता है। वही उसका धर्म है। इस धर्म का रूप परिवर्तित हो सकता है या उसका क्रम-विकास भी हो सकता है।

फिर धर्म कहने से स्वभाव का भी बोध होता है। जैसे अग्नि का धर्म है सभी वस्तुओं को जलाना। मानव का स्वभाव है कि वह थोड़े में संतुष्ट नहीं होता, वह अनन्त को चाहता है। नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्। फिर मानव स्वभाव से सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को चाहता है। इससे सभ्यता एवं संस्कृति का विकास होता है।

व्यक्तिगत रूप में जीवन में इस समन्वयकर्ता एवं प्रगति पथ पर प्रेरणा प्रदाता की खोज में निकला मानव उपस्थित होता है—ईश्वर अथवा ब्रह्म के समक्ष। ईश्वरानुभूति अथवा ब्रह्मज्ञान जिसके जीवन में जितना उपस्थित होता है वह उतना धार्मिक है। अर्थात् अनुभूति ही धर्म के प्राण हैं। जो धर्म अनुभूतिहीन है वह केवल बाह्याडम्बर एवं निरर्थक वागाचार है।

**अमिय:** महाराज, अब मेरा दूसरा प्रश्न है। रामकृष्ण-वेदान्त से हम क्या समझते हैं? अर्थात् इसके तत्त्व एवं साधना की मूल बातें क्या हैं? वेदान्त के सिद्धान्त एवं श्री रामकृष्ण का जीवन किस प्रकार समन्वित हुआ है? अवथा वेदान्त श्री रामकृष्ण के जीवन में किस प्रकार आचरित हुआ है?

**स्वामी गम्भीरानन्द जी:** रामकृष्ण-वेदान्त, यह एक नया शब्द है। श्री रामकृष्ण ने प्राचीन मत का ही अनुसरण किया था। इसके अन्तर्गत द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा अद्वैतवाद-तीनों हैं। रामकृष्ण-वेदान्त में ये तीनों मत ग्रहणीय हैं। यहाँ तक कि अन्यान्य वेदान्त मत जैसे द्वैताद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद इत्यादि भी ग्रहणीय हैं।

रामकृष्ण-विवेकानन्द के अनुसार, मानव का आध्यात्मिक जीवन क्रमविकास का पथ अवलम्बन करके चलता है, द्वैत से अद्वैत तक। उनके चिन्तन में कोई भी मत त्याज्य नहीं है: प्रत्येक मत क्रम-विकास के पथ पर एक-एक आलोक स्तम्भ है।

इन सभी की आपेक्षिक सत्यता है, किन्तु चमर सत्य ब्रह्माद्वैत है। इस प्रकार सभी मतों को स्वीकार कर लेना रामकृष्ण-विवेकानन्द के जीवन में जितना प्रस्फुटित हुआ है उतना अन्य किसी भी आचार्य के जीवन में नहीं हुआ है। परन्तु साथ-साथ यह बात भी याद रखनी चाहिए कि सभी मतों को सत्य मानने पर भी श्री रामकृष्ण उन सभी को हमेशा समान मर्यादा नहीं देते थे। हठयोग, कर्ताभजा मत इत्यादि के संबंध में वे भक्तों को सावधान कर देते थे।

रामकृष्ण-विवेकानन्द ने सभी मतों को जैसे सत्य माना है, वैसे ही ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा योग निरपेक्ष रूप से एक ही उच्चतम आदर्श तक पहुँचा देते हैं इस बात को भी उन्होंने स्वीकार किया है। फिर स्वामी विवेकानन्द ने तो स्पष्ट कहा है, इनमें से दो-तीन अथवा सभी का एकत्र समन्वय करके भी मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में और भी कहा है, जिसके जीवन में इन चारों का समन्वय नहीं हुआ है, उसका चरित्र श्री रामकृष्ण रूपी साँचे में ठीक तरह से गढ़ा नहीं गया है।

रामकृष्ण-विवेकानन्द ने समाज संस्कार की ओर बहुत अधिक जोर नहीं दिया था। समाज के सम्बन्ध में श्री रामकृष्ण के श्रीमुख से अचानक दो-चार बातें निकल पड़ी थीं जो अत्यन्त मूल्यवान हैं। जैसे उन्होंने कहा था, "एक उपाय से जाति भेद उठ सकता है, वह उपाय है—भक्ति। भक्तों की जाति नहीं होती। भक्ति होते ही देह मन, आत्मा—सब शुद्ध हो जाते हैं..." उनके अनुसार जाति स्वाभाविक रूप से जायगी। उसे खींचतान करके हटाना नहीं पड़ेगा। अथवा विवाहादि के सम्बन्ध में श्री रामकृष्ण ने कहा है— जन्म, मृत्यु तथा विवाह ईश्वर के हाथ में हैं। उनका एक बहुत बड़ा कथन यह है कि खाली पेट धर्म नहीं होता। परोपकार के सम्बन्ध में उन्होंने कई बातें कही हैं एवं इस कार्य की प्रशंसा कर स्वयं भी संभव स्थानों पर दूसरों का उपकार किया है या उसके लिए चेष्टा की है। फिर उन्होंने यह बात भी कही है कि कर्मयोग कठिन है, किन्तु निष्काम भाव से कर पाने पर अच्छा है। समाज संस्कार के संबंध में स्वामी विवेकानन्द की वाणी स्पष्टतर एवं और भी साफ है। वे बाल-विवाह के सम्पूर्ण विरोधी थे। असवर्ण विवाह या अन्तर्प्रदेशीय विवाह की उन्होंने निन्दा नहीं की थी, अपितु कहा है कि ये सब क्रमशः आयेंगे। कुलीन प्रथा को उनका समर्थन नहीं मिला है। जनसाधारण के बीच शिक्षा प्रसार को उन्होंने बहुत उच्चासन दिया है। इस शिक्षा के फलस्वरूप समाज के कई कुसंस्कार अपने-आप दूर हो जायेंगे। परोपकार को स्वामी जी ने सेवायोग के रूप में अति उच्च स्थान प्रदान किया है। परोपकार के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान तक की प्राप्ति हो सकती है एवं यह आदर्श उन्होंने श्री रामकृष्ण के पास से पाया था। सन्यासियों को इस सेवायोग में प्रवर्तित करने वाले अग्रदूत थे स्वामी जी।

परोपकार से यद्यपि अपना ही उपकार होता है ( निःस्वार्थ भाव आता है, अहं दूर होता है, आध्यात्मिक चेतना उन्नत होती है ) तथापि जब तक देहबुद्धि, जगत्-बुद्धि, उपकार-बुद्धि इत्यादि है तब तक व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से दूसरों का उपकार ठीक-ठीक होता है या नहीं अर्थात् उपकार का स्वरूप क्या है, वह भी विचार कर देखने की जरूरत है। गाँवों की अर्थनैतिक उन्नति करने के लिए, गरीब लोग दो पैसे कमाते हैं या नहीं, शिक्षा के क्षेत्र में बालक-बालिकाएँ ठीक-ठीक पढ़ाई करते हैं या नहीं, स्वास्थ्य के क्षेत्र में चिकित्सादि कार्य ठीक से होते हैं या नहीं—ये सब भी देखना सेवायोगी का कर्तव्य है। यद्यपि वे हमेशा याद रखेंगे कि वे उपकार नहीं कर सकते। उपकार एकमात्र भगवान ही कर सकते हैं।

स्वामी जी ने कहा है—I am a Socialist ( मैं

समाजवादी हूँ)। सब के लिए समान भोगाधिकार के वे समर्थक थे। वे चाहते थे 'भोगाधिकार का साम्य साधन'।

श्री रामकृष्ण ने नारियों की मर्यादा अनेकांशों में बढ़ायी है। उन्होंने अपनी सहधर्मिणी की देवीरूप में पूजा की थी। भैरवी ब्राह्मणी को गुरुरूप में वरण किया था एवं श्री माँ सारदादेवी को अपने आध्यात्मिक पथ का विस्तार करने के लिए आदेश दिया था। ईश्वर की मातृभाव से साधना के संबंध में कई साधकों ने उपदेश दिये हैं, फिर भी श्री रामकृष्ण की वाणी एवं आचरण से यह जिस प्रकार प्रकट हुआ है वैसा पूर्व में कभी नहीं हुआ था।

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द समन्वय की वार्ता वहन करके लाये थे; केवल धार्मिक क्षेत्र के लिए ही नहीं, मानव जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों के लिए भी। जैसे—ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं योग का समन्वय। विभिन्न राजनैतिक मतवादों का समन्वय। विचित्रताओं के बीच समन्वय। एक शब्द में, जहाँ कहीं भी जितना भी पार्थक्य क्यों न रहे, उस पार्थक्य को मर्यादा देकर भी ऐक्य सम्पादन किया जा सकता है—यही उनकी मर्मवाणी है।

ज्ञान मार्गी साधारणतः भक्ति को अग्राह्य करके चलते हैं, किन्तु श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द ने उसे ऊच्च मर्यादा दी है। रामकृष्ण ने यहाँ तक कहा है, कलियुग में नारदीय भक्ति ठीक पथ है।

श्री रामकृष्ण ने कहा है, अद्वैतज्ञान आँचल में बाँधकर जो इच्छा हो करो। अर्थात् साधान क्षेत्र में अद्वैतवाद के साथ अन्य किसी भी मतवाद का सामंजस्य वे असंभव नहीं समझते थे।

**अभिय** : महाराज, अब मैं तीसरा प्रश्न करता हूँ। क्या मानव-चेतना में श्री रामकृष्ण क्रमशः अधिक स्थान ग्रहण कर रहे हैं? क्या उनकी भावधारा क्रमशः विस्तार लाभ कर रही है? यदि हाँ तो किस प्रकार एवं कितना?

**स्वामी गंभीरानन्द जी** : श्री रामकृष्ण का भाव क्रमशः फैल रहा है, ऐसा ही तो प्रतीत हो रहा है। बहुत दिनों पहले (सन् १९३६ में, श्री रामकृष्ण जन्म शत वार्षिकी के अवसर पर), कवि रवीन्द्र नाथ ने लिखा था।

बहु साधकेर बहु साधनार धारा,
धेयाने तोमार मिलित हयेछे तारा।
तोमार जीवने असीमेर लीला पथे,
नूतन तीर्थरूप निलो एइ जगते;
देश विदेशेर प्रणाम आनिलो टानि,
सेथाय आमार प्रणाम दिलाम आनि।

अर्थात्—

बहु साधकों की बहु साधना धारा,
ध्यान में तुम्हारे मिलित हुई हैं सारा।
जीवन में तुम्हारे असीम के लीला पथ पर,
नया तीर्थ लिया रूप इस जगत मंच पर;
देश-विदेशों के प्रणाम लाया टानकर,
दी मैंने भी वहीं निज प्रणति लाकर।

इस छोटी एवं सुन्दर कविता का सम्पूर्ण अंश प्रणिधान-योग्य है। खासकर पाँचवीं पंक्ति। 'देश-विदेशों के प्रणाम' वास्तव में आश्चर्यजनक रूप से आकर्षित कर रहे हैं श्री रामकृष्ण। श्री रामकृष्ण साहित्य में क्रमशः वृद्धि हो रही है तथा यह अधिक भाषाओं में अनुवादित हो रहा है। फिर कई लोग इस मतवाद को लेकर मौलिक ग्रन्थों की भी रचना कर रहे हैं। हमलोगों को अज्ञात कई स्थानों पर श्री रामकृष्ण की भाव राशि बिखर चुकी है एवं अभी भी बिखर रही है। श्री रामकृष्ण की वाणी में ऐसी निजस्व शक्ति है जो अपने प्रचार के लिए केवल रामकृष्ण मठ-मिशन के ऊपर निर्भर नहीं करती है। श्री रामकृष्ण मठ एवं मिशन का सम्प्रसारण प्रतिवर्ष हो रहा है। इसके अतिरिक्त, कई प्राइवेट आश्रमादि भी अपनी शक्ति से ही स्थापित हो चुके हैं। हम लोगों को इसकी कोई

खबर भी नहीं है। केवल भारत में ही नहीं भारत के बाहर भी कई देश लक्षणीय है।

मानव की दृष्टि भोगवाद से आत्मसंयम की ओर क्रमशः बढ़ रही है। श्री रामकृष्ण का त्याग ज्ञात या अज्ञातभाव से इस त्याग की खुराक जुटा रहा है। 'आत्मा' नामक एक चीज है एवं वह सर्वत्र समान है; यह बात क्रमशः स्वीकृत हो रही है। मानव क्रमशः दूसरों की सेवा में आत्मनियोग कर रहा है। धर्म के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, जागतिक उन्नति के क्षेत्र में एवं अन्यान्य क्षत्रों में आध्यात्मिक भित्ति अवलम्बन कर सेवा का मनोभाव क्रमशः बढ़ रहा है। इसको केवल मानवता की संज्ञा नहीं दे सकते हैं।

**अमिय :** मेरा चतुर्थ प्रश्न इस प्रकार है। एक बार एक सांख्यिक आँकड़े में मैंने देखा था कि इस देश के साधुओं की संख्या सत्तर लाख है। इतना नहीं होने पर भी कम से कम दस लाख साधु तो अवश्य हैं ही। ये दसनामी सम्प्रदाय के एवं उसके बाहर के हैं, जेसे उदासी सम्प्रदाय। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें रामकृष्ण मठ के साधुओं की गणना नहीं होती है; यद्यपि वे दसनामी सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। अभी भारत के साधु सम्प्रदायों के ऊपर, साधु समाजों एवं साधु संघों के ऊपर श्री रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा ने कितना प्रभाव विस्तार किया है? एवं किस प्रकार?

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** एक समय था जब हरिद्वार का दसनामी सम्प्रदाय रामकृष्ण मिशन के साधुओं को भंगी संन्यासी कहता था। किन्तु अब वे कृरामष्ण मिशन के साधुओं के साथ एक पंगत (पंक्ति) में बैठकर खाते हैं तथा भंडारा में निमंत्रण देते हैं। कई आश्रमों में विद्यालय एवं डिस्पेन्सरी खोले जा रहे हैं। (तात्पर्य स्वामीजी के सेवायोग का आदर्श गृहीत एवं अनुसृत हो रहा है।) कई दसनामी साधु जन-सभाओं में श्रीरामकृष्ण को अवतार कहकर प्रचार करते हैं। वैष्णव साधु एवं दसनामी साधु एक ही भण्डारा में सम्मिलत नहीं होते हैं। किन्तु रामकृष्ण मिशन के साधुओं के पास दोनों पक्षों से निमंत्रण आते हैं एवं हम लोगों के द्वारा इस प्रकार का व्यवहार करने पर भी कोई किसी प्रकार का दोष नहीं देते हैं। दसनामियों के बीच केवल गेरुआ वस्त्रधारी साधुओं को भिक्षा दी जाती है। इसलिए, उनके ब्रह्मचारी भी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। किन्तु रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मचारी श्वेत वस्त्र धारण कर भी निर्विवाद रूप से भिक्षा पाते हैं। रामकृष्ण मिशन की ओर से भंडारा की व्यवस्था होने पर उसमें अन्य साधुओं को निमंत्रित किया जाता है एवं वे भी निर्विवाद रूप से आते हैं।

**अमिय :** महाराज, इस बार मेरा पंचम प्रश्न है। श्री रामकृष्ण संघ का प्रधान केन्द्र बेलुड़ एवं देश-विदेश व्यापी इसके शाखा-केन्द्रों में हजार हजार नर-नारी आते हैं। कई लोग दीक्षा भी ग्रहण करते हैं। ये लोग रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा को वास्तविक रूप से कितना ग्रहण करते हैं? समाज में वह कितना प्रतिफलित होता है? या सब कुछ गतानुगतिक रूप से ही हो रहा है?

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** हजार-हजार ही क्यों, इससे भी अधिक लोग कई बार आते हैं। अब उनके मनोराज्य में श्री रामकृष्ण ने कितना प्रभाव विस्तार किया है, इसका मापदण्ड क्या होगा? जो लोग श्री रामकृष्ण के दीक्षित भक्त नहीं हैं— वे भी उनकी वाणी एवं जीवनी के संबंध में ग्रन्थादि की रचना करते हैं। इसके अतिरिक्त, गीतों, नाटकों, चलचित्रों इत्यादि में भी श्री रामकृष्ण की जीवनी एवं वाणी प्रतिध्वनित हो रही है। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी में भी श्री रामकृष्ण ने अपना स्थान बना लिया है। रामकृष्ण मिशन का विस्तार भी इसकी साक्षी दे रहा हैं। पुस्तक-पुस्तिकाओं, सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भी

श्रीरामकृष्ण की वाणी बहुत प्रचारित हो रही है।

**अमिय :** महाराज, अब मैं छठा प्रश्न करता हूँ। रामकृष्ण संघ अर्थात् रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन प्रतिष्ठा के पहले एवं बाद में इस देश में नाना धार्मिक, सामाजिक आन्दोलन हुए हैं। उनका लक्ष्य था समाज संस्कार। मेरी जितनी समझ है, उसके अनुसार मैं यही जानता हूँ कि श्री रामकृष्ण संघ कोई समाज-सेवा या समाज-संस्कार का संगठन नहीं है। यह एक आध्यात्मिक धार्मिक संस्था है। इसके कार्यों के द्वारा यदि समाज-कल्याण साधित हो तो मूल्यवान होने पर भी वह एक उपोत्पाद (By-product) ही है। इसका मूल लक्ष्य है जाति-धर्म-वर्ण निर्विशेष सभी मनुष्यों को ईश्वर-प्राप्ति में सहायता करना। उन्नततर मानव तैयार करना जिनके जीवन की मूल वस्तु होगी पवित्रता एवं निःस्वार्थ परता। इस संबंध में आपका अभिमत जानने की इच्छा होती है।

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** अमिय, तुम्हारे प्रश्न के भीतर ही मेरा अभिमत दे दिया गया है और समाज—संस्कारादि विषयों के सम्बन्ध में जो कहना है वह तुम्हारे दूसरे प्रश्न के उत्तर में कह दिया है।

**अमिय :** महाराज, मेरा सातवाँ प्रश्न यह है-किसी भी महान्दोलन के विस्तार के साथ-साथ उसकी गंभीरता खो जाने की आशंका रहती है। रामकृष्ण—वेदान्त आन्दोलन क्रमशः विस्तार प्राप्त कर रहा है, यह बात स्वीकार करने पर यह प्रश्न उठाता है कि विस्तार के साथ-साथ इसकी गति एवं गंभीरता बचाकर किस प्रकार रखी जाएगी ? इसका गंभीर आध्यात्मिक मूल्य बोध अक्षुण्ण कैसे रखा जायगा ?

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** प्रश्न ठीक ही है, किन्तु इस विषय में मठ एवं मिशन के परिचालक वृन्द एवं साधारण सदस्यगण सचेतन हैं एवं कुछ-कुछ प्रतिकार की चेष्टा भी की जाती है। जैसे विद्या-चर्चा में उत्साह देना। विभिन्न केन्द्रों में साधु-ब्रह्मचारी ध्यान-जप, पूजा-पाठ, भजन-कीर्त्तन आदि नियमित करते हैं या नहीं—यह देखना अध्यक्ष का एक प्रधान कर्तव्य है। किसी का पैर बेताल पड़ने पर उसको सावधान कर दिया जाता है। शास्त्र चर्चा एवं प्रचार पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। ब्रह्मचारियों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया है। साधु लोग सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों के मुखापेक्षी न हों, इसके लिए भी चेष्टा की जा रही है। भक्तों के द्वारा रामकृष्ण मठ एवं मिशन के बाहर जो आश्रमादि स्थापित हुए हैं या हो रहे हैं, उनके साथ संबंध रखकर पुराने साधुगण उनका गतिपथ ठीक कर देते हैं। अन्यान्य रूप से भी उनकी यथासंभव सहायता की जाती है। साधुओं का गृहस्थ के यहाँ ठहरना नियम के विरुद्ध है एवं भक्त लोग भी जिससे उस प्रकार का नियम पालन करें, उस ओर नजर जाती है।

**अमिय :** महाराज, मैं अपने आठवें प्रश्न का दो भाग कर लेना चाहता हूँ। पहला भाग है—प्रारंभ में इस आन्दोलन में जो युवक आते थे, खासकर जो साधु बनते थे उनके उत्साह-उद्दीपन के साथ त्याग एवं वैराग्य के प्रति तीव्र आकर्षण रहता था। इतने में यह आन्दोलन चौथी पीढ़ी में पहुँच गया है। अभी जो नवयुवक आते हैं उनका प्रधान आकर्षण क्या संघ का विशाल कर्म विस्तार है या पहले की तरह त्याग और वैराग्य है ? एवं इस प्रश्न का द्वितीय भाग इस प्रकार है-- साधकों में कोई-कोई सोचते हैं कि पहले निर्जन में तपस्या करके, ज्ञान-भक्ति लाभ करके उसके बाद कर्म में अवतीर्ण होना उचित है। फिर बाकी लोगों के विचारानुसार स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवायोग ही सुसम्पूर्ण आध्यात्मिक साधन रूप से वरणीय है। इस विषय में आपके विचार एवं मीमांसा की प्रार्थना करता हूँ।

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** प्रश्न के दोनों ही अंश प्रासंगिक एवं चिन्तनीय है। सर्वप्रथम पहले अंश को लिया जाए। देखो, वर्तमान में जो नव-युवक आते हैं वे लोग भी त्याग वैराग्य का भाव लेकर ही आते हैं। किन्तु यह बात भी याद रखनी चाहिए कि त्याग-वैराग्य के साथ-साथ परोपकार कर पाने पर उस त्याग-वैराग्य का स्रोत एक अच्छा अवलम्बन लेकर प्रवाहित होता है। अन्यथा, अपनी कुटिया बाँधने एवं भिक्षा के लिए दो बार सत्र-सत्र घूमने एवं अधिकांश समय व्यर्थ की बात-चीत या निद्रा में बिताने को आशंका रह जाती है। स्वामीजी की वह कहानी याद है न? हिमालय के एक स्थान पर एक साधु को कम्बल सिर पर ओढ़कर आराम से सोते हुए देखकर स्वामीजी ने कहा था, यहाँ आकर भी बेटा कैसे सो रहा है? दो, इसको हल में जोत दो।'

त्याग-वैराग्य का भाव जिससे बचा रहे इसी-लिए भक्तों के पास अपने लिए अर्थादि भिक्षा करना निन्दनीय हैं। साधु लोग यह जानते हैं।

अब इस प्रश्न के द्वितीय अंश पर आया जाए। देखो, पहले निर्जन में तपस्या करके, ज्ञान-भक्ति लाभ करके तब कार्य में अवतीर्ण होना उचित है--इसे स्वामीजी ने नहीं माना है।

इसको लेकर स्वामीजी के साथ उनके संन्यासी एवं गृही-गुरुभाइयों के बहुत वाद-विवाद हो गये हैं। पहले ज्ञान लाभ एवं भक्ति लाभ करने का आदर्श जो अपने मन में रखते हैं वे कभी भी सेवा-योगी नहीं हो सकते हैं।

ज्ञानप्राप्ति के बाद वे सोचते हैं कि श्री शंकरा चार्य ने तो ज्ञान एवं कर्म का सहअस्तित्व अस्वी-कार किया है, अतएव ज्ञानी होकर मैं कर्मकाण्ड में लिप्त हो सकता हूँ! संघ की प्रथमावस्था में कई वर्षों तक देखा गया था कि कई साधु कोई काम नहीं करके उत्तर काशी, कनखल (हरिद्वार) या संघ के आश्रमादि में वास करते थे। इनमें कइयों की जन्मजात धारणा थी कि वे ज्ञानी हो गये हैं। फिर उनलोगों के मतानुसार श्री शंकराचार्य ने ज्ञान एवं कर्म के सहास्तित्व को अस्वीकार किया है, अतएव दार्शनिक दृष्टि से भी उनके लिए कर्म करना संभव नहीं था। फिर वे नवागत ब्रह्मचारियों या नवीन साधुओं को अपनी 'फिला-सफी' सिखाते थे। जिसके फलस्वरूप नये साधुओं में से कोई-कोई उनके दल में सम्मिलित हो जाते थे।

ऊपर से वे सोचते थे, चूँकि वे ज्ञानी हैं, अतः उनकी देखभाल करना संघ का ही दायित्व है। इस प्रकार आत्मकेन्द्रित होकर वे दूसरों की सुख-सुविधा नहीं सोचते थे एवं अपनी असुविधा होने पर संचालकों की समालोचना करत थे। फिर कोई-कोई उस स्वतंत्रता के आवेश में संघ के बाहर जाकर 'प्राइवेट' आश्रमादि की प्रतिष्ठा करते थे।

परवर्ती काल में इन सब के प्रतिकार के लिए सभी स्वस्थ एवं सबल साधुओं को कर्म करने के लिए कहा जाता है एवं नियम बनाया गया है कि संचालकों की अनुमति के बिना कोई भी नये आश्रमों की स्थापना नहीं कर सकता है। साथ-साथ पूर्वोक्त साधुओं के द्वारा प्रतिष्ठित प्रायः सभी आश्रमों को संघ के अंगीभूत कर लिया गया है।

वर्त्तमान साधुओं में प्रायः सभी विश्वास करते हैं कि स्वामीजी के द्वारा प्रवर्तित सेवायोग का अवलम्बन कर आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, भक्ति-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, यहाँ तक कि मुक्ति लाभ भी हो सकता है।

भक्तिज्ञान तो अचानक कहीं से आता नहीं है, उसके लिए साधना चाहिए। कोई भी मार्ग निष्कं-टक नहीं है। कर्मयोगी को जैसा अभिमान आता है, भक्त या ज्ञानी का भी वैसा ही अभिमान उसके पथ का कंटक होकर खड़ा होता है। सेवायोग में भी पद-स्खलन की आशंका है। इस 'नेति' पक्ष की ओर विशेष दृष्टि न देकर 'इति' पक्ष की ओर

दृष्टि-निबद्ध करने पर देखते हैं कि सेवायोगी आत्मोन्नति के साथ-साथ देश एवं दस लोगों के मंगल साधन में व्रती है। इस मंगल साधन को भी तो हिसाब में रखना होगा।

**अमीय :** महाराज, इसबार मेरा नवम प्रश्न है। श्रीरामकृष्ण संघ तथा रामकृष्ण-वेदान्त आन्दोलन की सफलता से हम क्या समझें ? इसके ठीक-ठीक लक्षण क्या हैं ?

**स्वामी गंभीरानन्दजी :** लक्षण के रूप में सर्व प्रथम इस पथ के पथिकों की संख्या को ले सकते हैं। वह बढ़ती ही जाती है। आश्रमादि की संख्या एवं आने-जाने वाले लोगों की संख्या में क्रमवृद्धि दूसरा लक्षण है। ग्रन्थादि का प्रकाशन एवं ग्राहकों की संख्यावृद्धि और एक लक्षण पकड़ा जा सकता है। मानव के मनोराज्य में इसके प्रभाव की कितनी वृद्धि हुई है वह प्रत्येक व्यक्ति के विश्वास के ऊपर निर्भर करता है। हम लोग सोचते हैं कि वृद्धि होती है। फिर कोई-कोई यह अस्वीकार करते हैं। किन्तु जागतिक दृष्टि से जिन लक्षणों की बात मैंने कही है, उसे तो कोई भी अस्वीकार नहीं कर पायेगा।

**अमिय :** महाराज अब मैं दशम् प्रश्न करता हूँ। जो रामकृष्ण संघ एवं रामकृष्ण-वेदान्त आंदोलन के अनुयायी हैं वे इसके साथ संयुक्त होकर अपने व्यक्तिगत जीवन को कैसे धन्य कर सकते हैं ? एवं इस आन्दोलन की सफलता के लिए किस प्रकार यथासंभव सेवा निवेदित कर सकते हैं ? साधु भक्त निर्विशेष इसके लिए उनके कर्त्तव्य क्या हैं ?

**स्वामी गम्भीरानन्द :** रामकृष्ण मठ एवं मिशन संघबद्ध रूप से वेदान्त-कार्य चलाता है। भक्तगण स्थान-स्थान पर पाठ-चक्र या आश्रम स्थापित कर अनुरूप कार्य चलाते हैं। उन दोनों चेष्टाओं के बीच समन्वय की रक्षा के लिए प्रचार समिति द्वारा निकटवर्ती इस जाति के प्रतिष्ठानों को संघबद्ध करने एवं उसकी समप्राणता की रक्षा करने की चेष्टा कुछ साधु करते हैं। अभी तक उन्होंने सफलता ही पायी है।

इसके अतिरिक्त पारिवारिक जीवन में सामूहिक रूप से ध्यान, भजन, आरति इत्यादि विशेष उपकारी हैं। इन सब कार्यों के द्वारा भक्त-परिवार केवल स्वयं ही उपकृत नहीं होते हैं, बल्कि उनके प्रभाव चारों ओर फैल जाते हैं !

योग्य व्यक्ति व्याख्यान देने, लेख लिखने, पुस्तकों की रचना करने आदि का कार्य भी हाथ में ले सकते हैं। अथवा कोई अर्थसंग्रह करके रामकृष्ण संघ के कार्यों में सहायता कर सकते हैं। स्वयंसेवक के रूप में संघ की सहायता करने का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

और सर्वोपरि है—व्यक्तिगत जीवन में रामकृष्ण-विवेकानन्द की भावधारा को व्यक्त करने की महान साधना।

( 'देश' साप्ताहिकी, २० फरवरी १९८८ से साभार अनूदित सं० )

---

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं : त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए, और शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा। —स्वामी विवेकानन्द

# द्वंद्व के शिकंजों में फँसा वर्तमान भारत

—ब्रह्मचारी रघुवर चैतन्य

आचार्य शंकर के अनुसार यह संसार 'अविद्या, काम, कर्म' के चक्र में फँसा अनन्त काल से निरंतर गति के साथ चल रहा है। उपनिषदों के अनुसार काम तीन हैं—पुत्र, वित्त और लोक। आज के संदर्भ में इसका अर्थ इन्द्रिय-सुख, धन की चाह, और मान-सम्मान की अदमनीय वासना से लगाया जा सकता है। न भूत और न भविष्य के ही मनीषियों में इसे नकारने की क्षमता हो सकती है।

तो क्या, भारत की समस्या इन तीन शब्दों-अविद्या, काम, कर्म—में सिमटी हुई है ? निस्संदेह। पर यह सार्वभौमिक समस्या है, किसी एक व्यक्ति या समाज की नहीं। जब तक इस जगत् का अस्तित्व है, ये रहेंगे। इसका समष्टिक उन्मूलन संभव नहीं, हाँ, व्यष्टिक रूप में उन्मूलन संभव है। इन मुख्य समस्याओं के अलावे हर व्यक्ति, हर समाज, हर देश की अपनी एक समस्या है जो देश-काल सापेक्ष है। दुर्भिक्ष के समय अन्न की समस्या, युद्ध के समय जान-माल की समस्या, महामारी के समय सामूहिक विनाश का भय, नपुंसक राजा के समय अराजकता की समस्या आदि लगी हुई रहती हैं। पर ये समस्याएँ अनंत काल के प्रवाह की तुलना में अत्यंत क्षणिक हैं, इनके आने-जाने का क्रम निरंतर लगा रहता है, और इसमें अधिक समय तथा ऊर्जा व्यय करने की आवश्यकता भी नहीं।

इन दोनों समस्याओं—सामूहिक अज्ञान एवं क्षणिक संकट के बीचोंबीच एक तीसरी समस्या होती है जो समय सापेक्ष होने के साथ-साथ किसी भी देश, जाति या समाज के भविष्य की एक निर्णायक गति प्रदान करने की क्षमता रखती है। हर सफल नायक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी गहराई से इस समस्या का अध्ययन कर इसका समाधान ढूँढ़ निकालता है। एक गलत कदम, एक अनिश्चित निर्णय उस समाज विशेष को पतन के गर्त्त में ले जाने के लिए काफी है जहाँ से निकलने के लिए उसे एक मँहगी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

उदाहरण के लिए हम मध्यकालीन यूरोप का चर्च के चँगुल में फँसना ले सकते हैं। जब रोम के चर्च की तूती बोल रही थी, उस समय विज्ञान को बुरी तरह से पीछे ढकेल उसकी अवहेलना की गयी। परिणाम अत्यंत बुरा हुआ। सामाजिक स्थिति बदतर होती गयी, गरीबों के माँ—बाप नहीं रहे, औरतें डायन के नाम से जलती रहीं, धर्म-युद्ध होते रहे। नव-जागरण के बाद से स्थिति में सुधार हुई और आज यूरोप का ढाँचा बदल चुका है।

या फिर हम बौद्ध युगीन भारत को उदाहरण-स्वरूप ले सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार —'बुद्धदेव ने एक बकरे की जान बचाकर भारत पर हजार बर्षों की गुलामी लाद दी।' निस्संदेह ऐसा संभव नहीं। हमें इसका भावार्थ लेना पड़ेगा। भारत में जब क्षात्र-धर्म की आवश्यकता थी उस समय भारतीय जन अहिंसा को पुकार में अपना गला बैठाये जा रहा था। दुर्भाग्यवशात् उस समय के अग्रणियों में से किसी ने समस्या के मूल को नहीं पकड़ा। कर्मवाद की आड़ में निकम्मे बने बैठे भारतीयों को एक लम्बे अरसे तक

पराधीनता का मुख देखना पड़ा।

इतिहास के पन्ने रंगे पड़े हैं ऐसी घटनाओं से। सुधी पाठकगण के समक्ष इसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

आज भारत पुनः एक नयी समस्या के समक्ष खड़ा है। समस्या पूर्णतः नयी तो नहीं, पर दिनों-दिन गहराती चली जा रही है। समस्या है—द्वन्द्व।

अजीब सा लगता है सुनकर पर है यह सत्य। हम द्वन्द्व के कगार पर खड़े हैं, किसी एक क्षेत्र में नहीं, वरन् लगभग हर क्षत्र में। हमारे कदम एक बार एक दिशा में उठते हैं और दूसरी बार दूसरी दिशा में। या तो हमें मालूम नहीं रहता कि हम किधर जा रहे हैं या फिर हममें सही-गलत चुनाव करने की क्षमता एवम् मानसिकता नहीं रहती है।

इसका सर्वोत्तम उदाहरण शिक्षा के क्षेत्र में पाया जा सकता है। स्वामीजी से आरंभ कर वर्त्तमान मनीषियों तक ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति पर अपनी असहमति व्यक्त की है। दोष कहाँ है ?

आज हर परिवार का लक्ष्य अपने घर के बालकों को 'पब्लिक स्कूल' में भर्त्ती कराना है। इनमें से अधिकांश विद्यालय पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण मात्र करते हैं। एक पोशाक, एककार्य-क्रम, एक-शृंखलता। निस्संदेह यह विचार उतम लगता है। कितना सुन्दर लगता है जब सैकड़ों बालक एक वेश में पंक्तिबद्ध हो समूह गान करते हैं ! कैसे ? वास्तव में यह पद्धति सैनिक-प्रशिक्षण के लिए उत्तम है। परन्तु हम एक धर्म-प्रधान देश हैं, जहाँ हर व्यक्ति को पथ चुनने का अधिकार है। यानी, हर व्यक्ति को अपनी मौलिकता का विकास करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। पर क्या इन विद्यालयों में जहाँ अपना मनपसंद भोजन तक नहीं मिलता, क्या किसी बालक के लिए अपनी मौलिकता का विकास कर पाना संभव है ? इसका परिणाम भयंकर होता है। इन विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करने के बाद अधिकतर बालक नियम-कानून मानने के आदी तो हो जाते हैं, परन्तु, अपनी मौलिकता का नाश कर।

हम चाहते हैं मौलिकता का विकास, मिलता है हमें कानून-परायणता।

हमारी सरकार गरीबोद्धार के लिए कदम उठाये ही चली जा रही है। क्या कुछ लाभ हो रहा है ? समाचार-पत्रों के आँकड़े इसका समुचित उत्तर बेहतर ढंग से देंगे। आखिर ऐसा क्यों ? क्योंकि इन योजनाओं को बनाने वाले अधिकतर अर्थशास्त्री या तो विदेशी योग्यता-पत्र धारण किये हुए हैं, अथवा, विदेशी लेखकों की पुस्तकें पढ़ अपनी उच्च शिक्षा समाप्त की हैं। क्या हमारे देश की समस्या को समझ, इसका हल निकालने के लिए अभी भी विदेशी मस्तिष्क की आवश्यकता हैं ? परिणाम—कभी हम औद्योगीकरण की ओर चल पड़ते हैं, तो कभी हरित-क्रान्ति की ओर दौड़ पड़ते हैं। हमें अभी तक एक निश्चित रूप-रेखा नहीं मिली है, जिसके द्वारा हम भारतीय रहते हुए भारत का विकास कर सकें।

भाषा की समस्या तो आज एक राष्ट्रीय समस्या बनी हुई है। मातृभाषा के अलावे एक और भाषा पर पूर्ण महारत हासिल करना उच्च बौद्धिक स्थिति की परिचायक है। परन्तु हम जिस प्रकार अंगरेजी के दलदल में फँसे हुए हैं, उससे उबर पाना तो कठिन नजर आता है। शराबी की तरह हमारे कदम लड़खड़ा रहे हैं। एक तरफ देश-प्रेम, तो दूसरी ओर औरों पर रौब जमा पाने का नशा। हमें समझ में नहीं आ रहा है कि इस अनचाहे निवाले को निगलें या उगलें।

और पोशाक के क्या कहने ! किसी भी बड़े शहर के उच्च वर्गीय परिवार के बालक-बालिकाओं को अगर देखें तो अजीबोगरीब सा लगता है। चेहरा हब्शियों सा, और पोशाक लंगूरों की !! इस अनचाही फैशनपरस्ती में राष्ट्रीय धन का

कितना अपव्यय होता है, इसका विचार करने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारी पोशाक अपनी नहीं, भाषा अपनी नहीं, विचार अपना नहीं। खान-पान को पुरानी पद्धति को हम दकियानूसी मानने लगे हैं।

हर देश, समाज एवं जाति की अपनी एक रीढ़ की हड्डी होती है : वह है संस्कृति। संस्कृति को अगर हटा लिया जाए तो अवशेष कुछ नहीं रहता। संस्कृति क्या है ? इसका उत्तर देना निश्चित रूप से कठिन है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति समूह का क्षेत्र-विशेष में देश एवं काल के परे चले जाना उस समूह विशेष की उस क्षेत्र विशेष में संस्कृति है। हम मुँह से खाते हैं, नाक से साँस लेते हैं—यह संस्कृति नहीं। परन्तु, हम थाली में खाते हैं, यह संस्कृति का द्योतक है।

हमारी अपनी संस्कृति रही है—हर क्षेत्र में। और, यही कारण है कि हजार वर्षों की पराधीनता के बावजूद आज हम जीवित हैं। पर जब से यूरोपीय सभ्यता ने भारत में जड़ जमानी शुरू की है, तब से हमारी संस्कृति खतरे में पड़ गयी है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम विदेशी सभ्यता की अंधाधुंध नकल कर रहे हैं। सत्य तो यह है कि हम उस सभ्यता की ओर ललचाई निगाहों से ताक रहे हैं। 'काको छोड़ूँ काको वन्दूँ, दोऊ पलड़ा भारी।' एक तरफ हम अपने धर्म को छोड़ नहीं रहे हैं, दूसरी ओर हम धड़ाधड़ इसके आदर्शों को नीचे किये जा रहे हैं। काली-पूजा कर रहे हैं, निगाहें पटाखों की ओर है।

स्वामीजी ने हमें बार-बार आगाह किया है उस खतरे से। अधिकतर व्यक्ति शुतुरमुर्ग की तरह अपने सर को बालू में छुपा अपने को सुरक्षित समझ रहे हैं। इस ओर ध्यान आकृष्ट करने वालों की हम पुरातनपंथी' कहकर अवहेलना कर रहे हैं।

आज आवश्यकता है हर व्यक्ति में एक बोध उत्पन्न करने की। इस चेतना का उदय कि हमें मालूम नहीं कि हम वास्तव में क्या चाहते हैं, काफी होगा। मर्ज मालूम हो तो दवा मिल ही जाएगी। शोर-शराबे गुल-गपाड़े से ऊपर उठकर हमें एक निगाह डालनी पड़ेगी अपनी हालत पर। दो नावों पर पैर रखने का परिणाम हर किसी को मालूम है, तथापि जाने-अनजाने हम वही कर रहे हैं।

"यह आत्मा सर्व भूत में समान है, केवल प्रत्येक भूत में उसके विकास का तारतम्य मात्र है। इस आत्मा का विकास करने की चेष्टा करो। देखोगे कि बुद्धि सब विषयों में प्रवेश करेगी। अनात्मज्ञ पुरुषों की बुद्धि एकदेश-दर्शिनी होती है। आत्मप्रकाश होने से, देखोगे कि दर्शन, विज्ञान सब तुम्हारे अधीन हो जायेंगे। सिंहगर्जन से आत्मा की महिमा की घोषणा करो। जीव को अभय देकर कहो, उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।"

— स्वामी विवेकानन्द

# राबेया

(स्वामीजी जब अमेरिका गये थे तब उन्होंने कुछ दिनों तक न्यूयार्क के पास एक निर्जन स्थान में वास किया था। कुछ पुरुष एवं महिलाएँ स्वामीजी के पास विशेष रूप से शिक्षित होने हेतु उनके साथ वहां रहती थीं। प्रत्येक सुबह उसको स्वामीजी धर्म के विषय में विभिन्न उपदेश देते। भक्ति और ज्ञान के विषय को स्पष्ट करने के लिए स्वामीजी ने राबेया की कहानी को संक्षेप में कहा था। यह कहानी एक फारसी किताब में भी संकलित है।)

राबेया का जन्म तुर्की के बासोरा नामक शहर में हुआ था। अरबी भाषा में राबा शब्द का अर्थ है चतुर्थ। अपने परिवार की चतुर्थ कन्या होने के कारण ही उसका नाम हुआ राबेया।

सोना (धातु) अत्यंत सुन्दर होता है। यही सोना जब आग में पिघल जाता है तब इसका रूप अनुपम हो उठता है। प्रत्येक मनुष्य को यदि हम एक स्वर्ण-पिंड मानें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि भगवान मनुष्य को दुःख के अनल में तपाकर उसे कुंदन का रूप प्रदान करते हैं। वे मनुष्य ही पृथ्वी की, विश्व की आँख हुआ करते हैं। परन्तु इनका जीवन दुःखी और वेदना से इस कदर घिरा होता है कि सुनने पर आंखें भर आती हैं।

राबेया का जीवन भी इसी तरह दुःखों के बीच ही प्रारंभ हुआ था। बचपन कितना मधुर होता है। मनुष्य भविष्य के सुन्दर स्वप्नों को अपने मन में चित्रित करता है। किशोरावस्था के शेष चरणों में, जब राबेया भविष्य की सुखद कल्पनाओं के संग जीवन पथ पर आगे बढ़ रही थी, ठीक उसी समय उसके माता-पिता दोनों का ही देहान्त हो गया।

विपत्ति जब आती है, एक साथ आती है। राबेया के पिता एक अत्यंत साधारण व्यक्ति थे। घर की आर्थिक अवस्था कोई खास संतुलित न थी। माता-पिता को असमय खोकर जब वे चारों बहनें कुछ करने को सोच रही थीं, तभी बासोरा नगर में भयानक अकाल पड़ा। कुछ दिनों में अन्न के अभाव में लोग मरने लगे। सब अपने प्राणों की रक्षा के उपायों में व्यस्त। दूसरों की ओर देखने का भी समय किसी को न था।

भाई-बहनों का एक साथ रहना अब संभव न था। राबेया को एक परिचित ने अपने पास रखने का आश्वासन दिया। वे उस व्यक्ति को एक भला आदमी जानते थे। परन्तु वस्तुतः वह अत्यंत धूर्त था। उसने राबेया को एक धनी के घर बेच दिया। उस समय उस देश में नौकरों की बिक्री होती थी। जो सबसे अधिक पैसा देता, वही होता मालिक। इन क्रीतदासों के साथ उनके मालिक जैसा चाहते वैसा व्यवहार कर सकते थे, जैसा कि किसान अपने गाय-भैंसों के साथ करते हैं।

राबेया का मालिक जैसा अत्याचारी था, वैसा ही निष्ठुर। दया-माया का लेश न था उसमें। वह राबेया को प्रतिदिन इतना काम देता कि दिन-रात अविराम काम कर भी वह उसे पूरा न कर पाती। और काम न पूरा कर पाने पर उसपर घोर अत्याचार किया जाता। राबेया कभी अपने काम में ढील न देती। फिर भी कभी अत्याचारों का सिलसिला खत्म न होता। मनुष्य की सहिष्णुता की एक सीमा होती है। अत्याचार और अपमान राबेया के लिए असह्य हो उठे, तब वह वहां से निकलने का उपाय खोजने लगी। बहुत सोचने के बाद उसने देखा कि भागने के सिवा कोई और रास्ता नहीं।

एक गहन अंधेरी रात को राबेया मालिक के घर से निकल पड़ी। पकड़े जाने पर क्या होगा, यह वह अच्छी तरह से जानती थी। इसलिए वह जी-जान से दौड़ने लगी। राबेया अत्यंत सुंदर एवं स्वस्थ थी। परन्तु यहाँ

अनादर, अनिद्रा और अत्याचारों के कारण अब उसके शरीर में कुछ न रह गया। थोड़ी दूर जाते ही वह हाँफने लगी। परन्तु रुकना भी संभव न था, अगर मालिक को पता लग गया··· ···।

और थोड़ी दूरी तय करने के बाद अचानक वह गिर पड़ी। एक हाथ भी टूट गया। भागना तो दूर, उठने की भी शक्ति उसमें नहीं रह गयी थी। राबैया ने सोचा इस समय भागना ही पड़ेगा, अन्यथा पुनः उसे पकड़ लिया जायगा। परन्तु चलने की शक्ति उसमें न थी, आंखों के समक्ष जो अंधकारमय पथ था, वैसा ही अंधकारमय उसका भविष्य भी हो उठा।

मानव के सभी आश्रय जब टूट जाते हैं, सभी आशाएं जब शून्य में विलीन हो जाती हैं, तभी वह मन-प्राण से भगवान के चरणों में स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर देता हैं। रो-रोकर राबैया अपना दुःख ईश्वर को सुनाने लगी। दुःखों के भार से बोझिल राबैया के अश्रु-कण ईश्वर के चरणों को प्रणाम कर उसके लिए सान्त्वना का संदेश ले आये। राबैया ने सुना उसके अंतर में जैसे कोई कह रहा हो, "दुःख न करो, तुम्हारे दुःख के दिन बीत गये। अच्छे दिन आ रहे हैं। तुम शांत हो जाओ।"

राबैया शान्त हो गयी, उसके अन्दर एक शक्ति सी जगती मालूम पड़ी। आवाक होकर वह देखने लगी कि उसके शरीर की पीड़ा समाप्त होने लगी और भागने के बारे में किसी को पता न था। अतः जो भयानक सजा उसे मिलनी थी, उससे मुक्ति मिली।

इस घटना के पश्चात् राबैया के मन में भगवान के प्रति आस्था और आकर्षण और बढ़ गया। धर्म पुस्तकों को पढ़ने और उपासना करने की उसकी इच्छा बलवती होने लगी। परन्तु समय कहां? मन की इच्छा जब प्रबल हो उठती है तब कोई भी बाधा उसे रोक नहीं सकती। दिन भर के निरंतर परिश्रम के बाद रात को विश्राम करने के बदले वह उपासना करती और धर्म-पुस्तकों का अध्ययन करती।

एक दिन रात में सभी अचेतन हो निद्रालीन थे। राबैया बैठकर उपासना कर रही थी, "तुम तो जानते हो प्रभु! मुझे तुम्हारी उपासना करने की कितनी इच्छा है। परन्तु तुमने तो मुझे पराधीन कर रखा है। इसलिए तो मैं इतनी देर से आ पाती हूँ।"

उस रात किसी कारण से मालिक की नींद टूट गयी थी। भगवान से जो प्रार्थना राबैया कर रही थी, उसे मालिक ने भी सुनी। आश्चर्यचकित होकर उसने देखा एक दिव्य ज्योति राबैया के मुख पर पड़ रही है। उससे उसका मुख अनुपम सुन्दर हो उठा, ज्ञान के आलोक से राबैया प्रभावशाली दिखने लगी। सांसारिक मलिनताओं का कोई लेश भी वहां न था। ऐसा भी हो सकता है यह मालिक ने कभी नहीं सोचा था। यहसब देखकर वह एकदम बदल गया। वह सोचने लगा, "ऐसी धार्मिक नारी को मैंने दासी बनाकर रखा है। न जाने कैसा घोर पाप मैंने किया है। मैं उसे पहचान न सका।"

राबैया का ध्यान भंग करे, यह साहस मालिक नहीं कर सका। दूसरे दिन राबैया जब काम-काज में व्यस्त थी, तब मालिक ने उसे बुलाकर कहा, "राबैया, मैं तुम्हें पहचान न सका। तुम्हें मैंने दासी बनाकर तुमसे दिन-रात काम करवाया। न जाने कैसा भीषण अपराध मैंने किया है। आज से मैंने तुम्हें मुक्त किया। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो, हमारे परिवार की सदस्या बनकर यहां रहो। हम सब तुम्हारी सेवा कर धन्य होंगे।"

पराधीनता से बढ़कर कोई दुःख इस पृथ्वी पर नहीं है। वैसे ही स्वाधीनता जैसा सुख भी कोई और नहीं। पराधीनता से मुक्ति पाकर राबैया के मन में आनन्द की सीमा नही। बहुत सोचकर उसने निश्चय किया कि वह मालिक के घर नहीं रहेगी। सबसे बिदाई लेकर वह नयी जगह की तलाश में निकल पड़ी।

अधिक खोजना न पड़ा। एक निर्जन बन के समीप एक छोटी सी कुटिया उसे मिल गयी। वहां कोई बाधा न थी। जितना समय हो सकता, वह उपासना करती। उसके पश्चात् धर्म-पुस्तकों का अध्ययन करती। वहां बहुत दिन बिताने के बाद राबैया मुसलमानों के तीर्थ मक्का गयी।

किसी-किसी धर्म में विवाह न करना पाप है, विशेष कर स्त्री जाति के लिए। इसलिए चकित होकर एक साधु ने उससे एक दिन पूछा, "क्या आपने विवाह नहीं किया है? क्या, विवाह की इच्छा आपके मन में नहीं है?"

राबेया ने कहा, "अपना कहने के लिए जो कुछ भी मेरे पास है, मेरा मन शरीर, सर्वस्व मैंने ईश्वर को सौंप दिया है। फकीर, मैं फिर कैसे पुनः एक व्यक्ति से विवाह करूँ?"

कुछ दिनों में ही राबेया का नाम सारे मक्का में फैल गया। उसका नाम सुनकर आबालवृद्ध नरनारी सभी नतमस्तक हो जाते। सैंकड़ों लोग उसके दर्शन करने एवं उससे उपदेश सुनने दूर-दूर से आते थे।

हुसैन बासोरी वहाँ के एक नामी साधु थे। सप्ताह में एक दिन वे सबको उपदेश देते थे। राबेया नियमित रूप से उस सभा में उपस्थित रहती थी। एक दिन किसी कारण वश राबेया उस सभी में न जा सकी। बासोरी जब उपदेश देने बैठे तो उन्होंने देखा कि राबेया नहीं है। यह देख वे उपदेश न देकर चुप बैठे रहे।

चुप बैठे बासोरी को देख एक श्रोता ने उनसे उपदेश देने का अनुरोध किया। बासोरी ने कहा, "राबेया अबतक नहीं आयी है।"

"राबेया न ही आये। कितने सम्मानित व्यक्ति सभा में उपस्थित हैं, फिर राबेया का इंतजार क्यों किया जाय?" लोगों ने कहा।

बासोरी ने कहा, "हाथी के लिए जो शर्बत तैयार किया गया है, उसे चींटी के मुँह में दे दूँ?"

हुसैन बासोरी राबेया को किस दृष्टि से देखते थे, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। धर्म कथा कहते कहते उनका मुख दीप्त हो उठता था। वे कहते थे, "राबेया, आपके तेज से ही यह प्रकाश मुझे मिलता है।"

एक दिन हुसैन ने प्रश्न किया, "राबेया, किस तरह आप धर्म-पथ पर इतना आगे बढ़ गयीं?"

हँसकर राबेया बोली, "संसार में जो कुछ मिलता है, उन सबका त्याग कर।"

राबेया का उत्तर अत्यंत छोटा है। परन्तु उसमें गूढ़ अर्थ है। विवेकानंद के गुरु श्रीरामकृष्ण कहते थे, "बच्चे को माँ खिलौना देकर भुलाये रखती है। बच्चा तब माँ को भूल आनन्दपूर्वक खिलौने मे खेलता है, माँ उसके पास नहीं आती, संसार के कार्यों को निपटाती है और बीच-बीच में देख जाती है। परन्तु जब खिलौना और अच्छा नहीं लगता, बच्चा जब माँ-माँ कह रोने लगता है, तब माँ सारे काम को छोड़कर दौड़कर आ उसे गोद में उठा ले जाती है। संसार के धन-जन-मन-सुख-यही सब लेकर तो मनुष्य दिन-रात व्यस्त रहता है। राबेया ने यह सब कुछ नहीं चाहा था। परमेश्वर को ही उसने अन्तर से कामना का पात्र बनाया था।

थोड़ा भी सुख या आराम के लिए राबेया कोई भी प्रयत्न नहीं करती थी। वह एकदम गरीब जैसा रहती थी। एक पुरानी दरी ही उसका विस्तर थी, एक ईट को ही वह तकिया बना लेती थी और एक टूटे घड़ें में रहता था उसके पीने का पानी।

उस समय उसकी खूब ख्याति थी। उसकी सेवा का तनिक अवसर पाना भी लोग भाग्य का वरदान मानते थे। परन्तु राबेया किसी से सेवा अथवा सहायता नहीं लेती थी। वे कहती थीं कि खाने, पहनने के अभाव के बारे में किसी से कुछ कहने में उन्हें संकोच होता था। यह दुनिया तो ईश्वर का राज्य है। यदि कुछ माँगना है तो उससे ही माँगूगी। वे किसी को नहीं भूलते हैं, धनी गरीब किसी को भी नहीं।

राबेया के संबंध में अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ सुनी जाती हैं। एक दिन दो साधु राबेया से मिलने आये। बहुत दूर से चलकर आने के कारण वे बड़े भूखे थे। राबेया के घर में तब सिर्फ दो रोटियाँ थीं। उससे किसी एक अतिथि का भी पेट नहीं भरेगा। राबेया दुविधा में पड़ गयी। ठीक उसी समय एक भिक्षुक भी आकर भिक्षा माँगने लगा। राबेया ने दोनों रोटियों को उस भिक्षुक को दे दिया। अतिथि उसे देख हैरत में पड़ गये।

कुछ देर पश्चात् एक नौकरानी ने आकर राबेया को कुछ रोटियाँ दी और कहा कि उसकी मालकिन ने राबेया के लिए इन्हें भेजा है। राबेया ने रोटियों को गिना और कहा, "यह सब ले जाओ, तुम्हें अवश्य कोई गलतफहमी हुई है।" नौकरानी ने कहा, " नहीं, नहीं, मालकिन ने आप ही को देने के लिए कहा है।"

राबेया ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हें गलतफहली हुई है, तुम इसे ले जाओ।"

नौकरानी रोटियाँ लेकर चली गयी। इधर अतिथियों का पेट क्षुधाग्नि से जल रहा था। वे राबेया के इस कार्य पर आश्चर्यचकित होने के साथ-साथ कुछ विरक्त भी हुए। कुछ देर बाद ही वह नौकरानी फिर लौट आयी। राबेया के हाथों में कुछ रोटियाँ देकर उसने कहा, "मालकिन ने इसे फिर आपके पास भेजा है।" इस बार रोटियों को गिनकर राबेया ने कहा, "हाँ, यह ठीक है। अब तुम जाओ।" तब उसने अतिथियों को रोटी परोसी। खाते-खाते एक ने पूछा, "क्या बात है, हम कुछ समझे नहीं।"

थोड़ा हंसकर राबेया ने कहा, "कुछ भी नहीं। मेरे पास मात्र दो रोटियाँ थीं। आप भूखे थे। दो रोटियों से आपका कुछ भी नहीं होता। ठीक उसी समय भिक्षुक आया। मैंने दोनों रोटियाँ उसे दे दीं और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की, "प्रभु ! सुना है, दान का दस गुणा पुरस्कार मिलता है। मेरे घर में भूखे अतिथि हैं। मैंने सर्वस्व दान कर दिया। अब तुम पुरस्कार दो। ठीक उसके बाद वह नौकरानी रोटियाँ ले आयीं। गिनकर देखा सिर्फ आठ थीं। मुझे हिसाब के अनुसार बीस पाने थे। इसलिए उसे वापस कर दिया। परन्तु फिर उसने बीस रोटियाँ मुझे लाकर दीं।"

इस संसार के मालिक परमेश्वर हैं। उसकी सजा के भय से अनेक लोग उसकी पूजा करते हैं। कुछ लोग मृत्यु के बाद स्वर्ग जाने के लिए उसकी उपासना करते हैं। परन्तु भगवान के प्रति सच्ची भक्ति जिसके हृदय में है वह निर्विकार, निस्वार्थ रूप से उपासना करता है। लोभ या भय के कारण नहीं।

एक बार राबेया बीमार थी। दो फकीर उससे मिलने आये। राबेया के कष्ट को देख एक ने कहा, "जो सच्चे मन से भगवान की उपासना करता है, उसे असीम शक्ति प्राप्त होती है। वह मनोबल से ही ईश्वर के दिये सारे कष्टों सजाओं को झेल लेता है।"

दूसरे ने कहा, "नहीं, जो सच्ची भक्ति करता है, वह भगवान के ऊपर निर्भर रहता है। भगवान जो देता है, वह सजा भी भुगतने में उसे आनंद आता है।"

राबेया ने कहा, "आपलोग जो कह रहे हैं, वह सब सत्य है। पर जिसने एक बार ईश्वर के साथ स्वयं को एकाकार कर लिया है वह हमेशा के लिए आनन्द के सागर में डूबा रहता है। सजा या कष्ट की बात उसके मन में आती ही नहीं।"

सिर्फ अरब या तुर्की में ही नहीं, समस्त संसार में राबेया का समादर होता है।

———

"चित्तशुद्धि के बिना ईश्वर के दर्शन नहीं होते। कामिनी-कांचन में पड़कर मन मलिन हो गया है, उसमें जंग लग गया है। सुई में कीच लग जाने से उसे चुम्बक नहीं खींच सकता। मिट्टी साफ कर देने से ही चुम्बक खींचता है। मन का मल नेत्र-जल से धोया जा सकता है।

—श्री श्रीरामकृष्णदेव

## श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा का समर्पण-समारोह

छपरा, १५ अप्रैल। श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम का समर्पण समारोह ११ से १३ अप्रैल, १९९२ तक एक अपूर्व आध्यात्मिक वातावरण में अत्यन्त आह्लाद एवं उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। आश्रम भवन की भव्य सजावट की गयी थी। मन्दिर के भीतर और बाहर सुश्री प्रीति गुप्ता के निर्देशन में सुन्दर रूप से अल्पना की गयी थी। ओम् से अंकित गेरुआ ध्वज मन्दिर पर लहरा रहा था। मंगल कलश, कदली स्तंभ, आम्र-पल्लव, हरित नारिकेल के फल आदि मुख्य प्रवेश द्वार के दोनों ओर सजाये गये थे।

अपने अत्यन्त नाजुक स्वास्थ्य के बावजूद रामकृष्ण मठ एवं मिशन के परम उपाध्यक्ष पूजनीय श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने १० अप्रैल की संध्या को ही आकर छपरा में एक आध्यात्मिक ऊर्जा और आनन्द लहरी का संचार कर दिया था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के अनुरागी भक्त श्री रामअवतार चौधरी के भवन में रात्रि विश्राम किया।

११ अप्रैल, १९९२। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दशवें अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के जन्म शताब्दी-समारोह का पावन वर्ष और श्री रामनवमी का मंगलमय दिवस—शनिवार। एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक दिवस—छपरावासियों के लिए। उषा की लालिमा फूटी। चैत्र का प्रातः समीर मंदाक्रान्ता गति से प्रवाहित होने लगा। पक्षी चहचहा उठे। वातावरण में एक दैवी संगीत अवतरित हुआ। और डा० केदार नाथ लाभ के निवास में स्थित पुराने आश्रम से साधुओं और गृही भक्तों का एक जुलूस निकल पड़ा। स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज (पटना), स्वामी शुद्धव्रतानन्दजी महाराज (वाराणसी), स्वामी सुहितानन्दजी महाराज (देवघर) और स्वामी शशांकानन्दजी महाराज (बेलुड़ मठ) के हाथों में श्री रामकृष्ण, माँ सारदा देवी, स्वामीजी और स्वामी अद्‌भुतानन्दजी महाराज के चित्र शोभित थे। स्वामी सत्यरूपानन्द (रायपुर) स्वामी निखिलात्मानन्द, स्वामी समचित्तानन्द (इलाहाबाद), स्वामी मुख्यानन्द (बेलुड़ मठ), स्वामी आत्मविदानन्द, स्वामी प्रणवेशानन्द (राँची), स्वामी भागवतानन्द (कटिहार), स्वामी लोकनाथानन्द (कानपुर), स्वामी प्रबुद्धानन्द (मुजफ्फरपुर) आदि जुलूस के आगे आगे और पीछे-पीछे सद्‌गृही आबाल वृद्ध नर-नारी। रामकृष्ण शरणम्, श्रीरामकृष्ण की जय के गूंजते मधुर स्वर। जुलूस आश्रम पहुँचा। श्री आभास कुमार चटर्जी, आइ. ए. एस. श्री महेन्द्र प्रसाद आदि पहले से वहाँ उपस्थित थे। मंगल कलश शीश पर लिए आश्रम के मुख्य द्वार के दोनों ओर खड़ी किशोरियाँ। शंख ध्वनि गूंज उठी। वातानुकूलित कार से डा० लाभ को साथ लेकर पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज का पदार्पण। शहनाइयाँ बज उठीं। मंदिर की परिक्रमा हुई। ठीक प्रातः ७ १५ बजे पूज्य श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने आश्रम के प्रवेश द्वार पर लगे संगमर्मर के नाम-पट्ट पर अंकित—"श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा का समर्पण, श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज, परम उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के कर कमलों द्वारा शनिवार, ११ अप्रैल, रामनवमी को सम्पन्न हुआ।"—समर्पण का अपने कर कमलों से अनावरण किया। मंदिर का द्वार खुला। वे उपासना गृह में गये। फिर गर्भ गृह का पर्दा हटाया। ठाकुर, माँ, स्वामीजी और लाटू महाराज के छवि-पटों के सम्मुख प्रणत हुए। दीप जलाया। आरती की। अर्घ्य दिये। पुनः प्रणाम—साष्टांग। फिर विशेष पूजा, होम, प्रवचन भजन, प्रवचन के कार्यक्रमों का सिलसिला शुरू हुआ।

दिन में हजारों भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किये। संध्या ६·३० पर जनसभा का आयोजन। विशाल पंडाल खचाखच भरा। जिला पदाधिकारी श्री सी. के. मिश्र ने महाराज का स्वागत किया। श्रीमत् स्वामी चन्द्रानन्द महाराज ने अध्यक्षता की। डा० केदार नाथ लाभ ने सचिव का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और पूज्य रंगनाथानन्दजी महाराज का परिचय श्रोताओं को दिया। और फिर पूजनीय महाराज का चिर प्रतीक्षित उद्‌घाटन भाषण अंग्रेजी

में शुरू हुआ। उन्होंने इस आश्रम के निर्माण में डा० केदारनाथ लाभ की निष्ठा की चर्चा करते हुए कहा कि लोक मंगल के कार्य में रुपया बाधक नहीं होता। दृढ़ संकल्प हो तो रुपये की कमी से मंगल का कार्य नहीं रुकता क्योंकि मनुष्य रुपया बनाता है न कि रुपया मनुष्य। उन्होंने आशा व्यक्त की कि छपरा में इस आश्रम के निर्माण से एक आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार होगा जिससे उत्तर बिहार का लोक जीवन स्वस्थ सबल होगा। इलाहाबाद आश्रम के सचिव स्वामी निखिलात्मानन्द और रायपुर आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने भी अपने प्रवचन इस अवसर पर प्रदान किये। भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरीय पदाधिकारी श्री आभास कुमार चटर्जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रारम्भ में स्वामी अत्मविदानन्दजी महाराज आदि ने वैदिक स्तवन का सस्वर पाठ किया और समापन-भजन प्रस्तुत किया स्वामी समचित्तानन्दजी महाराज ने।

१२ अप्रैल को प्रातः 'गीता का जीवन-दर्शन' विषय पर स्वामी सुहितानन्दजी की अध्यक्षता में धर्म सभा हुई। स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी शशांकानन्द और स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने गीता के विभिन्न पक्षों पर बड़े ही सारगर्भित व्याख्यान दिये। श्रीमती मानसी चटर्जी एवं श्रीमती सुजाता बोस ने मधुर भजन प्रस्तुत किये।

पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने उपासना गृह में श्रीरामकृष्ण के ५२ भक्तों को दीक्षा प्रदान की।

शाम ६·३० वजे पूज्य रंगनाथानन्द जी महाराज ने गार्हस्थ्य धर्म पर अत्यन्त विचारोत्तेजक व्याख्यान हिन्दी में देते हुए गृहस्थ धर्म की महत्ता पर विशद प्रकाश डाला और कहा कि सद्गृहस्थ होने पर ही अपना, परिवार का, समाज का राष्ट्र का और विश्व का मंगल हो सकता है।

स्वागत किया स्थानीय विधायक श्री उदित राय ने और धन्यवाद दिया श्री रामगोविन्द प्रसाद जी ने।

१३ अप्रैल की प्रातः कालीन धर्म सभा की अध्यक्षता श्रीमत् स्वामी मुक्त्यानन्दजी महाराज (बेलुड़ मठ) ने की। वक्ता थे स्वामी निखिलात्मानन्द, स्वामी शशांकानन्द और स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज।

संध्याकालीन समापन सत्र के मुख्य अतिथि थे हरियाणा के राज्यपाल श्री धनिक लाल मंडल। उन्होंने धर्म के नाम पर राजनीति करने से नये आतंकवाद के जन्म होने की चर्चा की और कहा आज केवल रामकृष्ण मिशन से ही एक आशा का संचार हो रहा है। राजनीति से दुःखों का अन्त संभव नहीं है।

श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने आमलोगों से राष्ट्र के लिए स्वार्थ को त्यागने एवं प्रेम तथा मानवता की सेवा करने की आन्तरिक अपील की। उन्होंने एक वार पुनः मृत भारत के ऊपर अमर भारत को स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

स्थानीय विधायक श्री उदित राय ने अतिथियों का स्वागत किया और आश्रम के सचिव डा० केदारनाथ लाभ ने अतिथियों का परिचय कराते हुए अंत में धन्यवाद ज्ञापन किया।

इस समारोह को सफल बनाने में श्री राय मनेन्द्र प्रसाद, श्री उमेशचन्द्र, डा. जे.एन. चौधरी, श्री व्रजमोहन प्रसाद सिन्हा, श्री रामप्रसाद सिंह, श्री शिशिर कु मल्लिक, डा. एस.के. बोस, श्री रामअवतार चौधरी, श्री अवनीन्द्र कु. लाभ, श्रीमती छवि गुप्ता, श्रीमती गंगा देवी लाभ, डा. आरती श्रीवास्तव, कुमारी रेणु सिन्हा, श्री धर्मनाथ झा, श्री मधुकर लाल कर्ण, श्री राम किशोर श्रीवास्तव, शचीन्द्रनाथ लाभ, श्री राजकिशोर तिवारी, श्री रविशंकर प्र० श्रीवास्तव एवं मधुसूदन यादव आदि ने विभिन्न रूपों में महत्तम योगदान किये।

इन तीन दिनों तक छपरे में एक स्वर्गीय आनन्द की वृष्टि होती रही, एक दैवी उल्लास की सृष्टि होती रही और एक आंतरिक परितृप्ति और उपलब्धि की अनुभूति का संचार होता रहा जिसमें यहाँ के नागरिक डूबते-उतराते रहे।

# वैद्यनाथ च्यवनप्राश

## अब पोलीजार में उपलब्ध

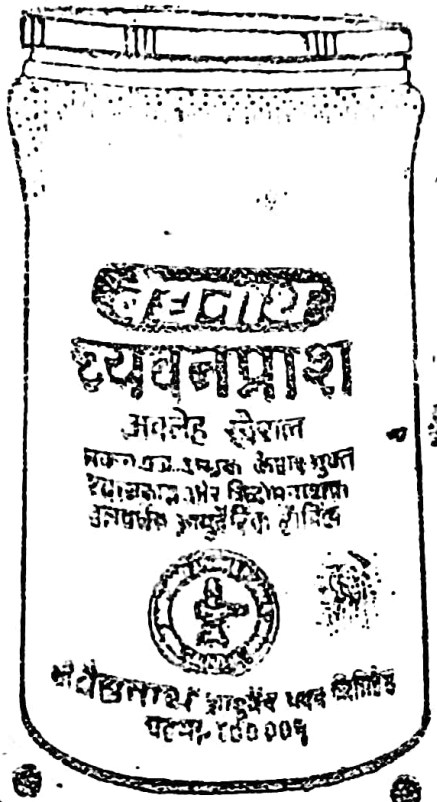

## आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त करें "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या – सी. एच. पी. – १४–८३

## स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| **योग** | |
| ज्ञानयोग | १४.०० |
| राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र मूलार्थ और व्याख्यासहित) | ९.०० |
| प्रेमयोग | ६.०० |
| कर्मयोग | ६.०० |
| भक्तियोग | ६.०० |
| ज्ञानयोग पर प्रवचन | २.०० |
| सरल राजयोग | २.०० |
| **धर्म तथा अध्यात्म** | |
| धर्मविज्ञान | ५.०० |
| धर्मतत्त्व | ४.५० |
| धर्मरहस्य | ३.०० |
| हिन्दूधर्म | ६.०० |
| हिन्दूधर्म के पक्ष में | २.०० |
| शिकागो वक्तृता | १.५० |
| नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान | ३.०० |
| भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता | ५.०० |
| भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश | २.०० |
| देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश) | १२.०० |
| कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य) | ४.०० |
| वेदान्त | ६.२५ |
| व्यावहारिक जीवन में वेदान्त | ३.५० |
| आत्मतत्त्व | ३.५० |
| आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग | ५.०० |
| मरणोत्तर जीवन | १.५० |
| **जीवनी** | |
| महापुरुषों की जीवनगाथाएँ | ६.०० |
| मेरे गुरुदेव | २.५० |
| इंशादूत ईसा | १.०० |
| पवहारी बाबा | २.०० |

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| **सम्भाषणात्मक** | |
| विवेकानन्दजी के संग में | १३.०० |
| स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप | ५.०० |
| विवेकानन्दजी के संस्मरण | ५.०० |
| विवेकानन्दजी के सान्निध्य में | ३.०० |
| **विविध** | |
| विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रतिनिधिक संचयन) | २५.०० |
| पत्रावली — ,, (सस्ता संस्करण) (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र) | १५.०० |
| भारतीय व्याख्यान | २१.०० |
| भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध | २०.०० |
| हमारा भारत | ४.०० |
| वर्तमान भारत | १.५० |
| नया भारत गढ़ो | २.५० |
| भारतीय नारी | २.५० |
| जाति, संस्कृति और समाजवाद | ४.०० |
| शिक्षा | ४.०० |
| सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार | ५.५० |
| मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ | ३.५० |
| विविध प्रसंग | १.५० |
| चिन्तनीय बातें | ९.०० |
| परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी) | ४.०० |
| प्राच्य और पाश्चात्य | ४.५० |
| युवकों के प्रति | ४.५० |
| विवेकानन्द– राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज) | १०.०० |
| शक्तिदायी विचार (,,) | १.२५ |
| सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,) | १.०० |
| मेरी समर-नीति (,,) | १.०० |
| मेरा जीवन तथा ध्येय (,,) | १.०० |

**प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४००१२**

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना – ४ में मुद्रित।